

चिन्ता का कारण बन रहा है। ऐसा अनुमान किया गया है कि मानवीय गतिविधियों से ग्रीन हाउस गैसों की वृद्धि से अभी सादियों तक समुद्र तल बढ़ने की तीव्र संभावनाएं हैं, इस आकलन से वैज्ञानिकों ने 2100 तक 0.5-1.0 मीटर तक समुद्र जल स्तर बढ़ने की संभावना व्यक्त की है। यह वृद्धि अपने आप में गंभीर चिन्ता का विषय है। यद्यपि ग्लेशियरों के पिघलने से इस बात का प्रमाण मिले हैं कि यह समुद्र तल में वृद्धि और भी ज्यादा हो सकती है। यह समुद्र जल वृद्धि स्तर 1990 में किये गये आकलन के आधार पर व्यक्त किया गया है। विशेष तटरेखाओं के समक्ष बढ़ता संकट खाद्य पदार्थों की एक बढ़ती चुनौती पेश कर रहा है। बहुत से अजलवायुवीय कारक इस संकट को और भी बढ़ा देती हैं जैसे घरों का निर्माण आदि। इसके अलावा विभिन्न चरम-चरम घटनाओं के द्वारा भी धीमी गति के परिवर्तन के आधार भूत संरचनाओं में क्षति होती है जिसे हरीकेन, भूकंप आदि से। हालांकि तटीय क्षेत्रों में कुछ नदी डेल्टा क्षेत्र भी 'यद्यपि हॉट-स्पॉट' का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जैसे मिसीसिपि, नील नदी, गंगा, और मीकांग नदियां आदि।

अगर औसत समुद्र जल में 0.5 मीटर की भी वृद्धि होती है तो तटीय क्षेत्रों में बाढ़ की स्थिति से पूरे विश्व के लगभग 5 से 200 मिलियन प्रभावित होगी। 4 मिलियन से अधिक लोग हमेशा के लिए विस्थापित हो जायेंगे। अलास्का के तटीय शहरों में पहले से ही पूनर्वास पाया जा रहा है। वहां समुद्री बर्फ के पिघलने से और परमाफ्रॉस्ट के पिघलने से समुद्री लहरों के प्रवेश का मार्ग खुल पायेगा और अपरदन को भी बढ़ावा मिलेगा। समुद्र जल स्तर में 1.0 मीटर की वृद्धि से अमेरिका के कई समुद्र तटीय क्षेत्रों में अपरदन की समस्या खड़ी हो जायेगी।

कैसे पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित होगा?

स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र के जीव हो चाहे जलीय पारिस्थितिक तंत्र के जीव हो सभी बदलते पर्यावरण के अनुसार अभ्यस्थ होने का प्रयास किया है या फिर अपनी अनुकूलित जलवायु में स्थानान्तरित होने का प्रयास करता है। लेकिन इनमें से बहुत से ऐसे जीव वनस्पतियां हैं जिनका स्थानान्तरण नहीं हो सकता। जलवायु के इस बदलते स्वरूप ने जीवन चक्र की प्रक्रियाओं को जैसे, परागण, प्रजनन, अण्डे सेना आदि प्रजातियों के बीच जो कि सेवन अंग अन्य खाद्य जाल के पहलुओं के बीच बेमेल की स्थिति को जन्म दे रहा है। ये पारिस्थितिक तंत्र पहले से ही

मानवीय गतिविधियों में संकटग्रस्त थे, जलवायु परिवर्तन से इनकी स्थिति में और भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा जिसकी क्षतिपूर्ति करना संभव नहीं होगा।

सागर में, परिसंचरण परिवर्तन पारिस्थितिक तंत्र के बदलाओं का एक मुख्य कारक होगा। उपग्रही आंकड़े यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि जलवायु परिवर्तन से समुद्री फाइटोप्लैंकटन पर गहरा प्रभाव पड़ेगा जो समुद्री खाद्य श्रृंखला का आधार है। जलवायु परिवर्तन से इस प्लैंकटन पर उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की व्यवस्था को बढ़ा देगा। बही पानी के लम्बवत् मिश्रण से समुद्री वर्ष के पिघलने की दर में भी वृद्धि करेगा। इस समय तपन प्रभाव से शीत क्षेत्रों के जन्तुओं का ध्रुवों की ओर पलायन गतिशील रहेगा।

सागरीय तारतम्यता में आये बदलाव से अन्य प्रभाव भी देखने को मिलेंगे। जैसे- तापमान वृद्धि में समुद्र तल के उपसतही क्षेत्रों में ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आयेगी जो एक 'डेड जोन' के रूप विकसित होने की संभावना रहेगी। समुद्री अम्लीकरण से CO₂ में अधिकता होगी जिससे प्रजातियों का जीवन खतरे में पड़ जायेगा। विशेषरूप से 'मोलस्का' और प्रवाल भित्तियों के मामले में। लेकिन सभी प्रजातियों CO₂ की वृद्धि से हानि की स्थिति में नहीं रहेंगी। जैसे: कुछ विविध प्रकार के फाइटोप्लैंकटन और अन्य प्रकाश संश्लेषित जीव लाभ की अवस्था में रहेंगे। फिर भी अगर CO₂ की सांद्रता सागरों में बढ़ती रही तो महासागरीय पारिस्थितिक तंत्र का क्षय होता रहेगा।

कैसे कृषि और खाद्य उत्पादन प्रभावित होगा?

जलवायु परिवर्तन का दबाव फसलों पर पड़ेगा जिससे वैश्विक खाद्य सुरक्षा पर संकट के बादल मंडराने लगे हैं। यद्यपि CO₂ के वायुमण्डल में वृद्धि से पादप जगत के विकास के लिए अनुकूल दशाएं होती हैं लेकिन ये खाद्य उत्पादन को बढ़ाने में सक्षम नहीं होगा। फसलों की प्रवृत्ति उच्च तापमान में अधिक विकसित होने की होती है जो अर्थात् अपने विकास में ज्यादा समय देंगे जबकि उत्पाद में समय कम। इसके अलावा, बदलती जलवायु से प्राकृतिक अपदाएं जैसे चक्रवात, वर्षा और अधिक तापमान, सूखा, बाढ़ से फसलों को अत्यधिक क्षति पहुंचेगी।

कृषि प्रभाव फसल और क्षेत्रों में अलग-अलग होगा। तापमान की मध्यम वृद्धि तथा वर्षा में वृद्धि से उच्च और मध्य

अक्षांशों के चारागाह भूमि और फसलों के लिए तो लाभ होता लेकिन निम्न अक्षांशीय क्षेत्रों में मौसमी सूखा और उत्पादन में कमी आयेगी। कैलिफोर्निया जहां अमेरिका का 50 प्रतिशत फल और सब्जियों का उत्पादन होता है, जलवायु परिवर्तन से इनके उत्पादन में भारी गिरावट होगी जिससे पूरे राष्ट्र को साथ सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लग सकता है। ये संकट अमेरिका को वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार 2050 तक ही देखने पड़ सकते हैं।

मॉडलों और सिद्धांतों आंकड़ों के विश्लेषण से यह पाया गया कि कुछ फसलों के लिए CO_2 से संबंधित लाभों को किसी भी हद तक नकारात्मक कारकों की तर्ज पर देखा जायेगा क्योंकि अन्य फसलों के उत्पादन में कभी भी प्रवृत्ति बहुत अधिक है। 20वीं शताब्दी में अगर तापमान 1°C बढ़ता है तो उसका प्रभाव निम्न होगा।

- 1°C तापमान बढ़ने पर, अमेरिका और अफ्रीका का मक्का उत्पादन और भारत का गेहूं उत्पादन में 5-15 प्रतिशत की गिरावट होगी।
- फसल रोग और बीमारियों का भौगोलिक सीमा और आवृत्ति में बदलाव।
- अलग तापमान के वृद्धि 5°C हो जाती है तो विश्व लगभग सभी क्षेत्रों के फसल उत्पादन में भारी कमी होगी तथा वैश्विक अनाजों का मूल्य दो गुने से भी अधिक हो जायेगी।

समृद्ध क्षेत्रों के उत्पादक इन खतरों को अनुकूलित करने में सक्षम हो सकते हैं जैसे: उदाहरण के लिए विविध फसलों जो वे उत्पादित करते हैं और किस समय पर वे उगा रहे हैं। वहां अनुकूल कम प्रभावी होगा जहां स्थानीय तपन 2°C से अधिक और यह उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों तक सीमित हो जायेगा।

वर्तमान जलवायु और विकल्प या उपाय

जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप सभी प्रकार के निर्णय निर्माताओं जैसे- व्यक्तियों, व्यापारियों, सरकारों सहित सभी जलवायु परिवर्तन को प्रतिक्रिया स्वरूप सभी स्तरों पर कार्य योजना बना रहे हैं और यह परिवर्तन कि भविष्य की जलवायु कैसी होगी कि जलवायु में हल्के परिवर्तन होंगे या हजारों वर्षों पीछे चरम जलवायु में होंगे यह गैसों के उत्सर्जन पर निर्भर करेगा। देश का वैज्ञानिक उपक्रम जलवायु परिवर्तन के परिणामों

समक्ष में सुधार लाने और उपलब्ध विकल्पों के विस्तार के द्वारा जलवायु परिवर्तन के भयावह को सीमित करने का तथा इसके प्रभाव को अनुकूल बनाने के कार्यों में योगदान दे सकते हैं।

पक्के सबूतों के आंकड़े यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि जलवायु परिवर्तन के कारणों में मानवीय गतिविधियों सर्वाधिक का योगदान है। मानव और प्राकृतिक प्रणालियों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए महत्वपूर्ण जोखिम बना हुआ है।

विज्ञान उत्सर्जन को कैसे सूचित करता है या सुझाव देता है?

जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की भविष्यवाणी करने की क्षमता में सुधार से जलवायु परिवर्तन के जोखिमों का मूल्यांकन आसान कर देता है या किया है। नीति निर्माता ने दो आधारभूत प्रश्नों को हल न किया।

1. किस हद तक तपन स्वीकार्य है उसका मानक क्या है?
2. किस हद तक गैसों का उत्सर्जन उस तापमान की सीमा के अन्दर रहेगा?

विज्ञान प्रथम प्रश्न का जवाब नहीं दे सकता क्योंकि इसमें ऐसे की मूल्य और न्यायिक निर्णय है जो इसके क्षेत्र से बाहर है। फिर भी दूसरे प्रश्न के जवाब देने के लिए विज्ञान ने महत्वपूर्ण विकास किया है।

यहां तक कि ऊर्जा के क्षेत्र में उम्मीद के अनुरूप सुधार के साथ, यदि वैश्विक जगत का व्यवसाय इसी तरह जारी रहा तो CO_2 का उत्सर्जन भी लगातार होता रहेगा जो वायुमण्डल में जमा होता रहेगा तथा पृथ्वी गर्म होती रहेगी। वायुमण्डल में CO_2 की सांद्रता को स्थिर बनाए रखने तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव में वृद्धि से बचने के लिए हमें CO_2 के वैश्विक उत्सर्जन में 80 प्रतिशत तक कम करना होगा।

अन्य उपयोगी अवधारणा वह है कि CO_2 से होने वाली अपेक्षित तपन की मात्रा कार्बन उत्सर्जन की संचित राशि पर निर्भर करता है। मानव ने आज तक वायुमण्डल में 500 बिलियन टन CO_2 को छोड़ा है। एक महत्वपूर्ण अनुमान से यह संकेत मिलता है कि वायुमण्डल में 1150 बिलियन टन CO_2 छोड़ा जाता है तो 2°C तापमान में वृद्धि हो जायेगी। यह मात्रा जितनी जल्दी बढ़ेगी उतनी ही जल्दी तापमान बढ़ेगा।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी के लिए क्या विकल्प है या उपाय क्या है?

जैसे की चर्चा की जा चुकी है, लम्बे समय में जलवायु परिवर्तन को सीमित या प्रतिबन्धित करने के लिए ग्रीन हाउस गैसों के नियंत्रण के लिए सबसे महत्वपूर्ण जैसे CO_2 है, जो मुख्य रूप से कुछ चुनिन्दा राष्ट्रों में जीवाश्मीय ईंधनों के दहन से उत्सर्जित होता है। घरेलू, औद्योगिक, आर्थिक और परिवहन तंत्र इसके बड़े स्रोतों में से है। इससे कोई मतलब नहीं इसके प्रयोग से गया होता है मतलब सिर्फ इसका सिर्फ इससे है कि कैसे इसका उत्पादन किया जाये और कैसे ऊर्जा का उपभोग किया जाये।

वर्तमान वायुमण्डलीय CO_2 का 50 प्रतिशत के लिए अमेरिका उत्तरदायी है और वर्तमान वैश्विक CO_2 के उत्सर्जन में भी लगभग 20 प्रतिशत इसी देश का योगदान है जबकि अमेरिका में वैश्विक जनसंख्या का मात्रा 5 प्रतिशत ही निवास करता है। हाल के दशकों में जब विकासशील देशों में विकासात्मक गतिविधियों में तेजी का रुख किया तो कुल वैश्विक ग्रीन हाउस गैसों के प्रतिशत में अमेरिका की हिस्सेदारी में तेजी से कमी देखी गयी। यहां पर जान लेना आवश्यक है कि यह कमी अमेरिका के कुल उत्सर्जन में कमी के कारण नहीं थी बल्कि एशियाई विशेषकर विकासशील देशों में आयी वृद्धि के कारण था। विकासशील देशों में चीन और भारत का उत्सर्जन तेजी से बढ़ रहा है। इसलिए केवल यू.एस. के उत्सर्जन में कमी करने से जलवायु परिवर्तन की प्रवृत्ति में कोई बदलाव नहीं आने वाला। हॉलांकि अमेरिका के मजबूत प्रशासनिक कार्यवाही से अपने देश में उत्सर्जन में कमी लाकर अन्य देशों के लिए इस रास्ते पर चलने पर मजबूर कर सकता है। ऐसे कहें अवसर उपलब्ध है जिसके वायुमण्डल में CO_2 की कमी की जा सकती है। जो निम्नलिखित हैं-

- वस्तुओं और सेवाओं के लिए अंतर्निहित मांग में कमी: उदाहरण के लिए- उपभोक्ताओं के व्यवहार एवं बरीयताओं को प्रभावित करने के लिए शिक्षा एवं प्रोत्साहन कार्यक्रमों का विस्तार देकर तथा पेट्रोलियम पर विकासात्मक निर्भरता के प्रतिरूप में कमी करके आदि।
- जिस ऊर्जा का उपयोग किया जा रहा है उसके दक्षता में सुधार करके: उदाहरण के लिए- रोधक, ऊष्मान

(हीटिंग), शीतलन और भावनों की प्रकाश व्यवस्था औद्योगिक औजारों आदि के लिए और अधिक क्षमता वाली विधियों का प्रयोग करके और कुशल घरेलू उपकरणों और वाहनों के खरीद के लिए प्रोत्साहित करके जिनमें ऊर्जा का उपभोग कम होता है।

- निम्न और शून्य कार्बन ऊर्जा स्रोतों के उपयोग का विस्तार करके उदाहरण के लिए- कोयले और तेल से हटकर प्राकृतिक गैस का उपयोग, न्यूक्लियर ऊर्जा का उपयोग नवीकरणीय ऊर्जा का विकास तथा उपयोग जैसे- सौर्यिक, वायु, भू-तापीय, जलविद्युत, बायोमास की स्थापना और विस्तार जिससे CO_2 को सीमित एवं प्रतिबंधित किया जा सके।
- CO_2 का वायुमण्डल में सीधे ग्रहण और पृथक करना: उदाहरण के लिए- वनों और जंगलों में वृद्धि करके ये कार्बन के प्राकृतिक अवशोषक होते हैं और मृदाओं का प्रबंधन करके। ऐसे यांत्रिक विधियों का विकास करके जो आस-पास की वायु से CO_2 को साफ कर सके।

उपर्युक्त इन अवसरों को विकसित करना होगा, इस माध्यम से उत्सर्जन में कमी लाने के लिए विविध क्षेत्रों की बड़ी भागेदारी की आवश्यकता होगी जैसे- निजी क्षेत्रों के निवेशकों के साथ उपभोगताओं का त्याहार तथा उनका विकल्प तथा व्यक्तिगत रूप आदि। केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के साथ स्थानीय स्तर पर भू-नीतियों के निर्माण के साथ-साथ इन सभी कारकों की सफलता में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। उत्सर्जन में कमी के लिए नीतियों को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले 4 प्रमुख उपकरण हैं:

1. उत्सर्जन का मूल्य निर्धारण करके जैसे कि कार्बन कर को वसूलना या कैप एण्ड ट्रेड तंत्र बनाकर।
2. उत्सर्जन को सीधा नियंत्रण करने के लिए कानूनी सहायता की एक नियामक संस्था अथवा ऐसे ऑटोमोबाइल ईंधन की अर्थव्यवस्था के मानकों की बाध्यता, उपकरण दक्षता मानक, लेबलिंग मानक। बिल्डिंग कोड और नवीकरणीय या कम कार्बन उत्सर्जन वाले पदार्थों का उपयोग करके ऊर्जा का उत्पादन।

3. उत्सर्जन को कम करने के लिए सार्वजनिक सब्सिडी का विकल्प उपलब्ध करने या कर्ज देने की गारंटी।
4. उत्सर्जन को कम करने के लिए शिक्षा और सूचना प्रदान करना और स्वैच्छिक उपायों को बढ़ावा देना।

व्यापक राष्ट्रीय कार्यक्रमों के माध्यम से ही उपरोक्त उपकरणों को लागू तथा उनमें सफलता पाई जा सकती है। ज्यादातर अर्थशास्त्री और नीति विश्लेषकों ने ये निष्कर्ष निकाला, यद्यपि कि CO₂ उत्सर्जन पर मूल्य रखना जो कि काफी ऊंचा है और समय के साथ बढ़ता भी इसलिए उत्सर्जन को कम करने के लिए यह काफी महंगा मार्ग है। यह विचार और दीर्घ काल निवेश के लिए सबसे प्रभावी कारक है। हालांकि प्रमुख क्षेत्रों में तेजी से प्रगति सुनिश्चित करने के लिए पूरक नीतियों की भी आवश्यकता है।

अन्य उत्सर्जित मानवीय तपन के पदार्थ या गैसें CO₂ के अलावा अन्य गैसें जो वैश्विक तपन के लिए मिलकर उतना ही ज्यादा योगदान देते हैं जैसा कि- मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड और कुछ औद्योगिक जैसे-जैसे क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC) जो अमेरिका के कुल ग्रीन हाउस गैसों का 15 प्रतिशत है। गैसें CO₂ के मुकाबले ज्यादा मजबूत रूप से तपन के लिए योगदान देती है।

बिना CO₂ वाली ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी बहुत कम लागत में किया जा सकता है। जैसे कि कोयला खनन और तेल निष्कासन के बाद भूमि को पुनः मृदा से भरता गैस के मुकाबले महंगा कार्य है। मीथेन में कमी से वायु की शुद्धता में भी बढ़ोत्तरी होती है।

CO₂ के अलावा ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन मुख्य रूप से कृषि को बताया जाता है उसमें भी विशेषरूप से तब तक जब मवेशी जुगाली करते हुए अपना भोजन पचाते हैं और उत्पादन के लिए प्रयुक्त नाइट्रोजन ऊर्वरक के उपयोग से। इन ग्रीन हाउस गैस में कमी विभिन्न तरीकों से किया जा सकता है। 'निवारण कृषि' के साथ कुल ऊर्वरकों के उपयोग में कमी आयेगी तथा पशुधन अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली में सुधार के द्वारा भी हमें कम किया जा सकता है।

कुछ अल्पकालिक प्रदूषण जो ग्रीन हाउस गैसों में शामिल नहीं है लेकिन तपन में योगदान देती है। जिसका एक उदाहरण है ब्लैक कार्बन (Black Carbon) या कालिख (Soot) जो जीवाश्म ईंधन के जलने से उत्सर्जित होता है और बायोईंधन

और बायोमास (उदाहरण विकासशील देशों में खाना पकाने में उपलों और लकड़ी आदि का प्रयोग) ब्लैक कार्बन स्थायी तपन में विशेष योगदान देता है। इन अल्पकालिक प्रदूषण तंत्रों के उत्सर्जन को कम करके निकट भविष्य में जलवायु परिवर्तन को कम करने में मदद कर सकता है।

ग्लोबल डिमिंग या सार्वत्रिक दीप्तिमंदकता

जलवायु परिवर्तन औसत मौसमी दशाओं के पैटर्न में ऐतिहासिक रूप से बदलाव आने को कहते हैं। सामान्यतः इन बदलावों का अध्ययन पृथ्वी के इतिहास को दीर्घ अवधियों में बाँट कर किया जाता है। ऊर्जा संघटक का कार्य पृथ्वी की सतह तथा निचले वायुमण्डल में ऊष्मा संतुलन को बनाये रखना है। पृथ्वी अपनी ऊर्जा का अधिकांश भाग लघु तरंगों के माध्यम से सूर्य से प्राप्त करती है। अगर यही सूर्य उर्जा पृथ्वी के वायुमण्डल में संचित हो जाये तो भूमंडलीय ऊष्मीकरण (या ग्लोबल वार्मिंग) जैसी स्थिति हो जाएगी अगर वही सारे सूर्य उर्जा पृथ्वी से पूरी तरह से वापस चला जाये तो ग्लोबल डिमिंग या सार्वत्रिक दीप्तिमंदकता की स्थिति बन सकती है

ग्लोबल डिमिंग या सार्वत्रिक दीप्तिमंदकता क्या है?

वैश्विक धुँधलापन, जिसे ग्लोबल डिमिंग (Global Dimming) या सार्वत्रिक दीप्तिमंदकता भी कहते हैं, पृथ्वी की सतह पर वैश्विक प्रत्यक्ष ऊर्जा मान की मात्र में क्रमिक रूप से आयी कमी को संदर्भित करता है। यह पृथ्वी की सतह तक पहुँचने वाले सूर्य के प्रकाश की मात्र में गिरावट को दर्शाता है। इसका मुख्य कारण वातावरण में मानवीय क्रियाकलापों से गंधक कण जैसे कणों की उपस्थिति को माना जाता है। चूँकि वैश्विक धुँधलेपन के प्रभावस्वरूप शीतलन की अवस्था भी देखी गयी है इसलिए माना जाता है कि यह वैश्विक तापन के प्रभाव को अंशतः कम कर सकता है।

ग्लोबल डिमिंग या सार्वत्रिक दीप्तिमंदकता के क्या कारण हैं—

1. एयरोसोल (Aerosols) जैसे ठोस कणों या तरल बूंदें, हवा या अन्य गैस के कोलाइड या श्लैष तंतु (colloid) ग्लोबल डिमिंग के प्रमुख कारक हैं। वातावरण में अधिकांश एरोसोल सूरज से केवल तितर बितर प्रकाश, सूरज की कुछ उज्ज्वल ऊर्जा अंतरिक्ष में वापस भेजते देते जिसकी वजह से पृथ्वी के जलवायु पर ठंडा प्रभाव पड़ता है।

2. सल्फर डाइऑक्साइड या उद्योग और आंतरिक दहन इंजन द्वारा जीवाश्म ईंधन जलाने के उप-उत्पाद जैसे कण वातावरणों में प्रवेश करते हैं और सीधे सौर ऊर्जा को अवशोषित करते हैं और पृथ्वी की सतह तक पहुंचने से पहले, अंतरिक्ष में विकिरण कर देते हैं।
3. सल्फर डाइऑक्साइड तथा उद्योग और आंतरिक दहन इंजन द्वारा जीवाश्म ईंधन जलाने के उप-उत्पाद वाली प्रदूषित जल जब वाष्पीकरण से बदल (ऐसे बादलों को 'भूरा बादल' भी कहा जाता है) का रूप ले लेती है तब बदल में विद्यमान कण सूर्य की उर्जा को संचित कर उसे विकिरण कर देते हैं। जिसके प्रभावस्वरूप पृथ्वी पर शीतलन की अवस्था हो जाती है।
4. वायु में उड़ने वाले विमानों से उत्सर्जित वाष्प विकिरण कर देते हैं, जिसे ग्लोबल डिमिंग या सार्वत्रिक दीप्तिमंदकता के कारको में से एक है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों और तैयारी के लिए क्या विकल्प या उपाये हैं?

यद्यपि ऐसी बहुत से प्रतिक्रियाओं स्वरूप और विभिन्न प्रयासों के अन्तर्गत जैसे, विभिन्न राज्यों, जिलों और समुदायों के द्वारा तथा राष्ट्र के अधिक से अधिक अनुभव की इसके निवासियों, संसाधनों और बुनियादी ढांचों की रक्षा की रक्षा के लिए जलवायु की अस्थिरता के ऐतिहासिक रिकार्ड के आधार पर अपेक्षाकृत स्थिर जलवायु के लिए अनुकूल योजनाओं का निर्माण किया गया। जलवायु परिवर्तन का अनुकूलन विभिन्न प्रतिमानों में अलग-अलग होगा अर्थात् दशकों या दशकों से अधिक समयान्तरालों में अलग-अलग होगा, जैसाकि भविष्य की जलवायु की संभावनाओं की एक श्रृंखला पर विचार और इनसे संबंधित प्रभाव तथा कुछ क्षेत्र अतीत के अनुभव से बाहर होंगे, जिसका परिणाम यह होगा कि प्रभाव की सीमा भी अलग-अलग होगी।

लाभ, ठोस जानकारी की कमी और विभिन्न प्रतिक्रियाओं की क्षमता और सीमा के द्वारा अनुकूलन के प्रयासों में बाधा उत्पन्न हो रही है। यह प्रभाव किसी भी देश के विविधता और अतिसंवेदनशीलता के कारण हो रहा है और शोध के लिए एक होली संस्था या संरचना जो केवल जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन कार्यों पर ही केन्द्रित है। वहीं अल्पावधि तरीके से प्रयोग होती है जो एक अस्थायी रणनीतिक कार्ययोजना है। वहीं दीर्घ अवधि

में ज्यादा नाटकीय और उच्च लागत की आवश्यकता होती है। निम्न चित्र से कुछ उदाहरण को दिया जा रहा है जिसमें लघु अवधि की कार्य योजना के प्रभाव से कुछ उम्मीदों के अनुसार समुद्र जल स्तर के वृद्धि पर विचार किया जा सकता है।

भारत और जलवायु परिवर्तन

यद्यपि जी.एच.जी. उत्सर्जनों के संदर्भ में भारत को नम्बर पहले पाँच में आता है, लेकिन यदि पहले किये गये उत्सर्जनों को हटा भी दिया जाए तो भी विकसित देशों की तुलना में भारत का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन बहुत कम है। उत्सर्जनों के उच्च स्तर का कारण यहां की बड़ी जनसंख्या, भौगोलिक आकार तथा बड़ी अर्थव्यवस्था है। भारतीय जलवायु परिवर्तन मूल्यांकन नेटवर्क (आईएनसीसीए) द्वारा मई, 2010 में किये गये मूल्यांकन भारत के लिए उपलब्ध अद्यतन आकड़े हैं। मूल्यांकन के अहम परिणाम यह हैं कि वर्ष 2007 में भारत से कुल निबल जीएचजी उत्सर्जन 1727.71 मिलियन टन CO_2 समसंयोजक (ई.क्यू.) हुआ, जिसमें से कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन 1221.76 मिलियन टन, मिथेन 20.56 मिलियन टन तथा नाइट्रस डाइऑक्साइड 0.24 मिलियन टन था। ऊर्जा, उद्योग, कृषि तथा अपशिष्ट क्षेत्रों से 2007 में हुए जीएचजी उत्सर्जन निबल CO_2 ई.क्यू. उत्सर्जनों का क्रमशः 58 प्रतिशत, 22 प्रतिशत, 17 प्रतिशत तथा 3 प्रतिशत गठित करते हैं।

जलवायु परिवर्तन के खतरे और संवेदनशीलताएँ

जलवायु परिवर्तन का प्राकृतिक संसाधनों तथा लोगों की आजीविका पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इसके पर्यावरणीय तथा सामाजिक-आर्थिक संबंधित क्षेत्रों पर व्यापक प्रभाव होंगे, विभिन्न अध्ययन दर्शाते हैं कि भारत में कृषि, जल, प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र, जैव-विविधता तथा स्वास्थ्य जैसे अहम क्षेत्र जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील हैं, यह ठीक उसी समय हो रहा है जब वह भारी विकास जरूरतों से जूझ रहा है। आईएनसीसीए रिपोर्ट में समुद्र के बढ़ते हुए जलस्तर चक्रवाती तीव्रता में वृद्धि, वर्षा जल सिंचित फसलों में फसल पैदावार में कमी, पशुधन दबाव, दुग्ध-उत्पादन में कमी, बाढ़ों में वृद्धि तथा

मलेरिया के विस्तार के प्रभावों की चेतावनी दी गई है। कृषि में कोई भी अनिश्चयता खाद्य प्रणालियों को काफी अधिक प्रभावित कर सकती है और इस प्रकार संसाधनों के अभाव से जूझ रही गरीब जनसंख्या के एक बड़े तबके की संवेदनशीलता को बढ़ा सकती है। इसी वजह से जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से संवेदनशीलता में कमी लाने तथा क्षेत्र विशेष उपायों और प्रयासों के माध्यम से अनुकूलन क्षमता में बढ़ोतरी करने के लिए तत्काल कार्रवाई किया जाना आवश्यक हो गया है।

सैमलेशन माडल का सुझाव है कि अनुकूलन और उर्वरकों की गैर-मौजूदगी में तापमान में 1 सेंटीग्रेड की बढ़ोतरी ही अकेले गेहूँ की उत्पादन में 6 मिलियन टन की कमी ला सकती है। दुग्ध उत्पादन जो कि हमारी खाद्य सूची में बहुत महत्वपूर्ण उत्पाद बन रहा है। डेयरी पशुओं के कारण वैश्विक जलवायु परिवर्तन से संबंधित ऊष्मा दबाव के बढ़ने से प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकता है। भारत के जंगल भी जलवायु परिवर्तन की सक्रियता और विविधता के चलते वन के स्वरूप को बदलने वाले हो जायेंगे और इस प्रकार वन उत्पादों पर आधारित आजीविकाएं भी प्रभावित होंगी। लू (गर्म हवाएं) छुआछूत से फैलाने वाली बीमारियाँ, जल संक्रमण के प्रमुख प्रभाव हैं जो जलवायु परिवर्तन के कारण हो सकते हैं, उदाहरण के तौर पर जैसे उष्णकटिबंधीय देशों के समान भारत भी छुआछूत से फैलने वाले रोगों जैसे मलेरिया के बहुत व्यापक और तेजी से फैलने का अंदेश है।

भारत द्वारा किये गये महत्वपूर्ण उपाय

- भारत ने 2008 में जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना को अपनाया है जिसमें प्रशमन और अनुकूलन दोनों उपाय हैं। आठ राष्ट्रीय मिशन जो एनएपीसीसी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बहु-आयामी, दीर्घावधिक और समन्वित कार्य नीतियों का द्योतिक है। अनुकूलन एनएपीसीसी का केन्द्र बिन्दु है, वहीं दो मिशन सौर ऊर्जा और ऊर्जा क्षमता प्रशमन को कम करने हेतु बनाये गए हैं।
- भारत ने 2020 तक 2005 के स्तर पर 20-25 प्रतिशत तक के इसके सकल घरेलू उत्पाद के उत्सर्जन सघनता कम

करने के घरेलू लक्ष्य की घोषणा की है। यह बहुक्षेत्र कम कार्बन विकास कार्य योजना के माध्यम से हासिल किया जायेगा। इसका आशय यह है कि कम कार्बन धारणीय विकास 12वें पंचवर्षीय योजना का केन्द्र बिन्दु होगा।

- एनएपीसीसी के अतिरिक्त, सभी राज्यों को भी राज्य स्तरीय कार्य योजनाओं को तैयार करने के लिए कहा गया है। इन योजनाओं को स्वशासन के विभिन्न स्तरों पर एनएपीसीसी के विस्तार के रूप में चिन्हित किया है जो आठ राष्ट्रीय मिशनों से जुड़ा हुआ है। दिल्ली और गुजरात जैसे कुछ राज्य और हिमालयी राज्य पहले ही इस दिशा में आगे बढ़ चुके हैं और जलवायु परिवर्तन से निपटने में सक्रिय हो रहे हैं। दिल्ली ने एनएपीसीसी की तर्ज पर तैयार किये गये 2009-2012 हेतु जलवायु कार्य योजना प्रारम्भ की है।

जलवायु परिवर्तन वित्त पोषण

वित्त पोषण के संदर्भों में, मुख्य निहितार्थों के साथ जलवायु परिवर्तन एक जटिल नीतिगत मुद्दा है। अन्ततः जलवायु परिवर्तन का निवारण करने की सभी कार्रवाइयों में लागत शामिल होती है। अनुकूलन तथा प्रशमन योजनाओं तथा परियोजनाओं को डिजाइन और कार्यान्वित करने के लिए भारत सरीये देशों के लिए वित्त पोषण बहुत अहम है। समस्या भारत जैसे विकासशील देशों के लिए और गंभीर है जो अनुकूल होने की थोड़ी क्षमता के साथ जलवायु परिवर्तन की मार सबसे ज्यादा सहने एवं इसके कारण इस पर अधिक वित्त पोषण करने की आवश्यकता पड़ेगी। अधिकतर देश बेशक जलवायु परिवर्तन को वास्तविक खतरे के रूप में ही देखते हैं और अपने अधिकार में सीमित संसाधनों के साथ अधिक व्यापक और एकीकृत तरीके से इसका निवारण करने का प्रयास कर रहे हैं।

डरबन में, एक दीर्घावधिक वित्तपोषण संबंधी कार्ययोजना शुरू की गई है। इसका उद्देश्य 2012 के बाद जलवायु परिवर्तन वित्तपोषण को बढ़ाने के लिए चल रहे प्रयासों में योगदान करना तथा वैकल्पिक साधनों सहित अनेक साधनों, सरकारी व निजी, द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय संसाधन जुटाने के लिए विकल्प को विश्लेषित करना है। इस कार्ययोजना से संगत रिपोर्ट तैयार की जाएगी जिनके अन्तर्गत जलवायु परिवर्तन वित्त पोषण संबंधी उच्च स्तरीय सलाहकार दल की रिपोर्ट तथा जी-20 के लिए

जलवायु वित्त पोषण जुटाने संबंधी रिपोर्ट और इन रिपोर्टों में निर्धारण मापदंड सम्मिलित है।

विकासशील देशों की अनुकूलन व न्यूनीकरण आवश्यकताओं के एक बड़े हिस्से की पूर्ति अंतर्राष्ट्रीय वित्तपोषण का निर्धारण करके की जा सकती है। विकासशील देशों के लिए जलवायु परिवर्तन वित्तपोषण की अपेक्षित राशि जुटाना आने वाले समय में एक बहुत बड़ी चुनौती होगी। तथापि, जलवायु वित्तपोषण की मांग और पूर्ति के बीच अंतरों को पाटने के लिए, निजी क्षेत्र सहित वैकल्पिक साधनों का पता लगाया जा सकता है, पर विकासशील देशों की निधियों का पूर्वानुमान और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए सरकारी वित्तपोषण एक मूल विषय रहना चाहिए।

नोट: वर्तमान परिदृश्य में, जलवायु परिवर्तन में वित्त पोषण के लिए भारत में उपलब्ध दो मुख्य माध्यम

1. घरेलू साधन

2. अंतर्राष्ट्रीय साधन

जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना के तहत आठ मिशन

1. राष्ट्रीय सौर मिशन

इसके अंतर्गत कुल ऊर्जा प्रयोग में सौर ऊर्जा की भागीदारी बढ़ाना तथा परमाणु ऊर्जा, पवन ऊर्जा एवं बायोमास ऊर्जा जैसे पुनर्नवीकरणीय व नानफॉसिल ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता को महत्व प्रदान करना है। इसके तहत वर्ष 2020 तक देश में 20,000 मेगावाट की सौर बिजली क्षमता संस्थापित करने का लक्ष्य है। इसका पहला चरण जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन (JNRSM) के नाम से चल रहा है। इसमें 1000 मेगावाट की क्षमता संस्थापित किए जाने की योजना है। चरण 2 में 4337 करोड़ रुपये व्यय अनुमानित है। चरण 2 के क्रियान्वयन की समीक्षा के बाद चरण 3 की आवश्यकता का आकलन किया जाएगा। यदि देखा जाए तो सौर मिशन अत्यंत महत्वाकांक्षी और दूरदर्शितापूर्ण योजना है। उल्लेखनीय है कि भारत में वर्ष के कुछ महीनों के छोड़कर लगभग वर्ष भर सूर्य ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है इसलिए यदि मिशन के लक्ष्यों के अनुसार कार्य किया जा सका तो न केवल सौर ऊर्जा के रूप में प्राप्त ऊर्जा हमारी ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति तो सहायक होगी ही साथ ही सौर ऊर्जा से प्राप्त ऊर्जा पर्यावरण मित्र भी होगी।

2. राष्ट्रीय वर्धित ऊर्जा क्षमता मिशन

इसके अंतर्गत नई संस्थागत प्रणालियों को सृजित करने का लक्ष्य है ताकि ऊर्जा दक्ष बाजारों का विकास और सुदृढीकरण किया जा सके। इसके लिए कई कार्यक्रम प्रारंभ किए गए जिसमें निम्न सम्मिलित हैं-

- बड़े उद्योगों की कारगरता संवर्धित करने के लिए पीएटी प्रणाली
- सुपर-एफिसिएंट उपकरण लगाने के कार्य को तीव्र करने के लिए सुपर-एफिसिएंट उपकरण कार्यक्रम। इसका उद्देश्य ऊर्जा दक्ष बाजार में निजी क्षेत्र के निवेश को आकृष्ट करना है।

3. राष्ट्रीय वहनीय पर्यावास मिशन

इसका उद्देश्य नगों में वहनीय परिवहन, ऊर्जा अनुकूल भवनों और वहनीय अपशिष्ट प्रबंधन को संवर्धित करना है। इस मिशन दस्तावेज में अनुमानित कुल लागत 1000 करोड़ रुपये परिलक्षित की गई है।

वस्तुतः यह मिशन नगरों में अपशिष्टों के प्रबंधन तथा ऊर्जा कुशलता बढ़ाने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। साथ ही इससे होने वाली ऊर्जा बचत से नगरों के ऊर्जा की मांग की पूर्ति करने में मदद मिलेगी।

4. राष्ट्रीय जल मिशन

इसके अन्तर्गत एक नियामक मशीनरी की स्थापना कर जल के अधिकतम प्रयोग हेतु एक फ्रेमवर्क के विकास का लक्ष्य है। जिसमें जल के प्रयोग में 20% तक किफायत को बढ़ावा देना लक्ष्य है। 11वीं और 12वीं पंचवर्षीय योजना अवधियों में, इस मिशन को क्रियान्वित करने के लिए अतिरिक्त राशि 89,101 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। इसमें राज्य आयोजनाओं और केन्द्रीय आयोजना के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही योजनाओं पर होने वाला व्यय भी सम्मिलित है।

5. राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन संबंधी कार्य नीति

इसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों का अभिज्ञान और स्वास्थ्य, जनसांख्यिकी, प्रवास और तटीय क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों की उपजीविका के क्षेत्रों में चुनौतियों के प्रत्युत्तर पर ज्ञान का प्रसार करना है।

जलवायु परिवर्तन और उससे उत्पन्न चुनौतियों एवं पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले इसके प्रभावों को देखते हुए जलवायु परिवर्तन संबंधी कार्य नीति एक अतिमहत्वपूर्ण मिशन है।

6. राष्ट्रीय ग्रीन इंडिया मिशन

इसके अंतर्गत वन भूमियों, सामुदायिक भूमि के अतिरिक्त 10 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में वन रोपण का लक्ष्य है। अगले 10 वर्षों में 10 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में वन रोपण करने के लिए इस मिशन के अंतर्गत 46,000 करोड़ रुपये का व्यय अनुमानित है।

निश्चय ही राष्ट्रीय ग्रीन इंडिया मिशन भारत में वनों के क्षेत्रफल में वृद्धि के साथ पारिस्थितिकीय संतुलन में ही सहयोग करेगा तथा जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली विकृतियों पर अंकुश लगाएगा।

7. राष्ट्रीय हिमालयी पारिस्थितिकी संवर्धन मिशन

इसके अंतर्गत हिमालयी पर्यावरण के लिए निगरानी प्रणाली की स्थापना करना है जिससे हिमालयी हिमखंडों (ग्लेशियरों) पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सके और

पर्वतीय पारिस्थितिकी को संतुलित करने के लिए सुरक्षा उपायों को विकसित किया जा सके।

हिमालय के ग्लेशियरों के निरंतर सिकुड़ते जाने और इसके फलस्वरूप हिमालयी नदियों तथा उस पर निर्भर संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र के लिए उत्पन्न होने वाले संकटों को देखते हुए यह मिशन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

8. राष्ट्रीय सतत् कृषि विकास मिशन

इस मिशन का उद्देश्य नई किस्मों की ऐसी फसलों का विकास करना है जो ऊष्मा व बुरे मौसम के कुप्रभावों से स्वयं को बचा सके तथा जलवायु परिवर्तन का अधिक कुशलता से सामना कर सके।

यदि देखा जाए तो जलवायु परिवर्तन ने कृषि के लिए गंभीर चुनौती पैदा कर दी है। ऐसे में राष्ट्रीय सतत् कृषि विकास मिशन का लक्ष्य जलवायु परिवर्तन ने अनुकूल बीजों का विकास करना केवल जलवायु परिवर्तन से कृषि पैदावार पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव से रक्षा करेगा वरन् खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में भी सहायक होगा।

जलवायु परिवर्तन पर हुए सम्मेलन (Conference on Climate Change)



जलवायु परिवर्तन पर हुए सम्मेलन

जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र 1972 से ही प्रयासरत है। जून, 1972 में स्टॉकहोम में पहला पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम United Nations Environment Programme (UNEP) की स्थापना की गयी।

पर्यावरण संरक्षण एवं जलवायु परिवर्तन पर अब तक हुए सम्मेलनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. मानव पर्यावरण सम्मेलन (Conference on Human Environment)

पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से मानव पर्यावरण सम्मेलन को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। पर्यावरण पर केन्द्रित यह सबसे पहला और महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था। वर्ष 1972 में स्वीडन के स्टॉकहोम में संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में पर्यावरण कार्यक्रम के अंतर्गत इस विशाल सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन में 119 देश सम्मिलित हुए थे, जिन्होंने पहली बार 'एक ही पृथ्वी' के सिद्धांत को स्वीकार किया था। इसी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का प्रादुर्भाव हुआ था। इस सम्मेलन में न सिर्फ पर्यावरण से जुड़े खतरों पर चर्चा की गई, बल्कि औद्योगीकरण से होने वाले कार्बन उत्सर्जन पर वैश्विक रूप से चिंता जाहिर की गई। विकसित देशों की श्रेणी में आने वाले देशों द्वारा उत्सर्जित प्रदूषणकारी गैसों के प्रभाव पर सम्मेलन में गंभीर चिंता व्यक्त की गई।

इस सम्मेलन में पर्यावरण सुरक्षा पर स्टॉकहोम घोषणा पत्र (Stockholm Proclamation on Environment) जारी किया

गया, जिसे विश्व पर्यावरण का मैग्नाकार्टा कहा जाता है। इस घोषणा पत्र में मुख्य रूप से इस बात पर जोर दिया गया कि पर्यावरण संरक्षण की दिशा में ध्यान देकर पृथ्वी के प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र को वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित रखा जाए। घोषणा पत्र के अनुसार मनुष्य को एक ऐसे पर्यावरण का मूलभूत अधिकार है, जिसमें सुखी और मान-मर्यादा पूर्ण जीवन, समानता, स्वतंत्रता और रहन-सहन की पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध हों। इस सम्मेलन में जहाँ वर्तमान और भविष्य में पर्यावरण को सुधारने व स्वच्छ रखने का संकल्प लिया गया, वहीं प्राकृतिक संसाधनों का सीमित उपयोग कर इन्हें भावी पीढ़ियों के लिए बचाए रखने पर गंभीर मंथन हुआ। सम्मेलन में जहां पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए पर्यावरण शिक्षा को प्रोत्साहित करने पर जोर दिया गया, वहीं जैव विविधता के संरक्षण का संकल्प लिया गया। इस सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसके बाद वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के प्रति चेतना बढ़ी और राष्ट्रों ने इस बात को ध्यान में रखकर नियम-कायदे बनाने शुरू किये।

2. हेलसिंकी सम्मेलन (Helsinki Convention)

वर्ष 1974 में बाल्टिक सागर क्षेत्र के समुद्री पर्यावरण की रक्षा पर हेलसिंकी में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। वस्तुतः यह प्रथम अंतर्राष्ट्रीय समझौता था, जिसमें प्रदूषण के सभी स्रोतों पर विचार किया गया चाहे वे पृथ्वी, सागर अथवा वायु के हों। इस सम्मेलन में तेल तथा अन्य प्रदूषणकारी पदार्थों द्वारा जलीय प्रदूषण को नियंत्रित करने के क्षेत्र में सहयोग के नियमन पर बल दिया गया। वर्ष 1992 में इसी विषय पर एक अन्य सम्मेलन हेलसिंकी में ही "Convention on the Protection

of the Marine Environment of the Baltic Sea Area" आयोजित किया गया जिसे बाल्टिक सागर क्षेत्र के देशों तथा 'यूरोपीय आर्थिक संघ' (EEC) के सदस्यों द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई। यह समझौता 1 जनवरी, 2000 से प्रभावी हुआ और 1974 के हेलसिंकी कन्वेंशन को निरस्त कर दिया गया।

3. लंदन सम्मेलन (London Convention)

समुद्री प्रदूषण तथा अपशिष्ट एवं अन्य पदार्थ क्षेपण निरोधक सम्मेलन जिसे लंदन सम्मेलन कहते हैं, का आयोजन 1975 में किया गया था। सम्मेलन के प्रावधानों को 30 अगस्त, 1975 से प्रभावी बनाया गया। इसका उद्देश्य जलयानों, वायुयानों या भस्मीकरण द्वारा अपशिष्टों के ऐच्छिक क्षेपण पर नियंत्रण रखना है।

4. यूरोपीय वन्य जीवन तथा प्राकृतिक निवास क्षेत्र संरक्षण सम्मेलन (Convention on the Conservation of European Wildlife and Natural Habitats)

वनीय वनस्पतियाँ तथा जीव, जैविक तथा प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण योजना देते हैं। इन वनीय संसाधनों के ह्रास के संबंध में सितंबर, 1979 में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया तथा इसके प्रावधानों को 1 जून, 1982 से प्रभावी बनाया गया।

5. विन्ना सम्मेलन (Vienna Convention)

इस सम्मेलन का आयोजन 1985 में किया गया था। इसका उद्देश्य मानवजनित गतिविधियों से उत्सर्जित होने वाले हानिकारक पदार्थों से ओजोन संस्तर की सुरक्षा करना था।

6. मांट्रियल प्रोटोकाल (Montreal Protocol in Substances that Deplete the Ozone Layer)

कनाडा के मांट्रियल शहर में 16 सितंबर, 1987 को मांट्रियल प्रोटोकाल पर 47 देशों में से 33 देशों ने हस्ताक्षर किया। मांट्रियल प्रोटोकाल पर 47 देशों में से 33 देशों ने हस्ताक्षर किया। मांट्रियल प्रोटोकाल विश्व में ओजोन क्षरण की समस्या के समाधान की दिशा में किया गया पहला प्रयास है। मांट्रियल प्रोटोकाल 1 जनवरी, 1989 से लागू हुआ।

इस प्रोटोकाल के अंतर्गत विकासशील देशों को ओजोन परत को क्षति पहुंचाने वाले सीएफसी रसायनों का विकल्प तथा ओजोन संगत तकनीक विकसित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। इस समझौते में सभी

हस्ताक्षरकर्ता देश क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC) के उत्सर्जन को प्रारंभ में 1986 के स्तर पर लाने तथा 1998 तक इसे आधा करने पर सहमत हुए थे। मांट्रियल प्रोटोकाल में बाद में दो प्रमुख संशोधन किए गए। इन संशोधनों का विवरण इस प्रकार है।

(A) लंदन संशोधन (1990) (London Amendment)
(1990)- 1990 में किए गए इस संशोधन के द्वारा ओजोन नाशक पदार्थों पर कड़े प्रतिबंध लगाए गए। इसमें कार्बन टेट्राक्लोराइड, ट्राइक्लोरोमीथेन तथा मिथाइल क्लोरोफॉर्म के उपयोग को पूरी तरह से समाप्त करने पर सहमति हुई।

(B) कोपेनहेगन संशोधन (1992) (Copenhagen Amendment) (1992)- इस संशोधन में पहली बार विकसित और विकासशील देशों के लिए अलग-अलग समयावधि निर्धारित की गयी। इसके अनुसार, ऐसे विकासशील देश जहां ओजोन क्षती पदार्थों की प्रतिव्यक्ति खपत 0.3 किग्रा. सालाना से कम है, उन्हें विकसित देशों की अपेक्षा इन रसायनों का इस्तेमाल खत्म करने के लिए दस वर्ष अधिक समय दिया गया। ऐसा माना गया है कि यदि संधि के प्रावधानों को संबंधित देश कड़ाई से लागू करेंगे तो 2050 तक ओजोन छिद्र स्वतः समाप्त होने की स्थिति में होगी।

नोट: उपर्युक्त प्रमुख संशोधन के अतिरिक्त मांट्रियल प्रोटोकाल में किए गए संशोधन इस प्रकार हैं- नैरोबी संशोधन (1991), बैकॉक संशोधन (1993), विन्ना संशोधन (1995), मांट्रियल संशोधन (1997) तथा बीजिंग संशोधन (1999)।

7. टोरण्टो वर्ल्ड कंफ्रेंस (Toronto World Conference)
कनाडा के टोरण्टो नगर में जून 1988 में आयोजित टोरण्टो कान्फ्रेंस ने वर्ष 2025 तक कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन में स्वेच्छा से 20 प्रतिशत कटौती करने के लिए सभी देशों में आग्रह किया जिससे हरित गृह प्रभाव को कम किया जा सके या इसके प्रभाव को अधिक होने से रोका जा सके और जलवायु परिवर्तन के संभावित खतरों से बचा जा सके।

8. विश्व पृथ्वी सम्मेलन 1992 (World Earth Summit-1992)

ब्राजील के रियो डि जेनेरियो में वर्ष 1992 के जून माह में विश्व पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन संपन्न हुआ। इसका आयोजन संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन (United Nations Conference on Environment and Development-

UNCED) द्वारा किया गया था। रियो नामक शहर में आयोजित होने के कारण इसे 'रियो सम्मेलन' भी कहा जाता है। चूँकि इस सम्मेलन का मूल सूत्र था। 'एक पृथ्वी', इसलिए यह पृथ्वी सम्मेलन कहलाया। 'एक पृथ्वी' से आशय यह है कि पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा की दृष्टि से पृथ्वी सभी के लिए एक है। देशों की राजनीतिक सीमाएं भले ही अलग हों, किंतु पृथ्वी को बचाने के लिए सभी राष्ट्रों को मिलकर एकीकृत प्रयास करने चाहिए। इस सम्मेलन में जहाँ वैश्विक स्तर पर पर्यावरण कार्यक्रमों की समीक्षा की गई, वहीं 21 वीं सदी में पर्यावरण संरक्षण पर व्यापक दस्तावेज (Framework) पेश किया गया। इस सम्मेलन में मुख्य रूप में कार्बन डाईऑक्साइड (CO₂) की मात्रा में हो रही बढ़ोत्तरी, प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित शोषण से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं, ओजोन परत की क्षति व इससे संबंधित समस्याओं, वैश्विक तापमान में वृद्धि, प्रदूषण की भयावह होती समस्या तथा जैव विविधता जैसे विषयों पर गंभीर विचार मंथन हुआ तथा स्टॉकहोम पर्यावरण सम्मेलन के बाद के पर्यावरण कार्यक्रमों की समीक्षा की गई।

पर्यावरण की दृष्टि से पृथ्वी सम्मेलन को अत्यंत महत्वपूर्ण सम्मेलन माना जाता है। इसमें पहली बार टिकाऊ विकास को देशों की नीतियों में शामिल करने पर सहमति बनी। सम्मेलन में जैव विविधता संरक्षण एवं जंगल में रहने वालों के वनाधिकारों की रक्षा की बात की गई। इस सम्मेलन में (United Nations Framework Convention on Climate Change-UNFCCC) नामक जो दस्तावेज प्रस्तुत किया गया, उसे अब तक का सबसे व्यापक कानूनी दस्तावेज माना जाता है। इसमें उन सिद्धांतों और उपायों को सम्मिलित किया गया है, जो जलवायु परिवर्तन को रोकने व ग्रीन हाउस गैसों में कमी लाने में प्रभावी हो सकते हैं। यह कानूनी रूप से एक बाध्यकारी अभिसमय है, जिसमें कुल 26 अनुच्छेद हैं। इसके अनुच्छेद 2 में इसका उद्देश्य ग्रीन हाउस गैसों में कमी लाना बताया गया है। इस अभिसमय के अनुच्छेद 3(1) को भी काफी महत्वपूर्ण माना जाता है, जिसमें (Common but Differentiated Responsibility) का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है, जिसके तहत विकसित देशों की जिम्मेदारी, विकासशील देशों की तुलना में जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में अधिक सुनिश्चित की गई है। पृथ्वी सम्मेलन में पर्यावरण सुधार को विश्वव्यापी जिम्मेदारी बताया गया, जिससे पर्यावरण के प्रति वैश्विक चेतना बढ़ी।

महत्वपूर्ण तथ्य

- 1983 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण पर विश्व आयोग की स्थापना ग्रो हारलेस ब्रंटलैंड की अध्यक्षता में की गयी।
- ग्रो हारलेम ब्रंटलैंड ने ही अपनी रिपोर्ट में पहली बार टिकाऊ विकास (Sustainable Development) की अवधारणा को प्रस्तुत किया।
- 1992 के रियो डि जेनेरियो सम्मेलन में इसे सभी देशों द्वारा अपनाए जाने पर सहमति व्यक्त की गयी।
- 1997 में नैरोबी घोषणा-पत्र द्वारा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) को सदस्य राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र की महत्वपूर्ण एवं आवश्यक संस्था के रूप में मान्यता दी गयी।

9. क्योटो प्रोटोकाल (Kyoto Protocol)

जापान के क्योटो शहर में आयोजित सम्मेलन (11 दिसम्बर 1997) (The Kyoto Protocol to the United Nations Framework Convention on Climate Change-UNFCCC) में 159 देशों ने आम सहमति पर हस्ताक्षर किया। इसे क्योटो प्रोटोकाल के नाम से जाना जाता है। इस सम्मेलन में अमेरिका द्वारा प्रस्तावित हरित गृह प्रभाव के लिए जिम्मेदार छह गैसों में कटौती किए जाने के प्रस्ताव को स्वीकार किया गया। ये 6 गैसों हैं- कार्बन डाईऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाइड्रो फ्लोरो कार्बन, परफ्लोरो कार्बन तथा सल्फर हेक्सा फ्लोराइड।

क्योटो प्रोटोकाल में इन गैसों के उत्सर्जन के स्तर को 2012 तक 1990 के स्तर पर लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। यह संधि 2006 में रूस द्वारा हस्ताक्षर करने के उपरांत प्रभावी हुई। इसकी अवधि 2012 तक थी। दिसंबर, 2012 के दोहा सम्मेलन में क्योटो प्रोटोकाल की अवधि को 2020 तक बढ़ाने पर सहमति व्यक्त की गई है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए तथा वर्ष 2012 में कनाडा भी इससे पृथक् हो गया था। क्योटो प्रोटोकाल अनुसूची-1 (विकसित एवं औद्योगिक देश) के देशों पर बाध्यकारी है जबकि विकासशील देशों पर बाध्यकारी नहीं है। इस संधि ने निम्न तथ्यों को मान्यता दी-

1. विकासशील देशों से ज्यादा विकसित देश हरित गैसों के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार हैं।

2. इस संधि में हालांकि यह कहा गया है कि विकासशील देश भी यह हरित गैसों के उत्सर्जन में कमी लायेंगे। लेकिन उनके लिए बाध्यता नहीं है।

10. जोहांसबर्ग सम्मेलन

1992 के रियो डि जेनेरियो के पृथ्वी सम्मेलन में किए गए निर्णयों की प्रगति की समीक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जोहांसबर्ग (द. अफ्रीका) में सम्मेलन का आयोजन किया गया। 26 अगस्त 2002 - 4 सितंबर 2002 के दौरान आयोजित इस दस दिवसीय सम्मेलन में 200 राष्ट्रों के 60 हजार प्रतिनिधियों के अलावा 106 राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों ने भी भाग लिया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता तत्कालीन द. अफ्रीका राष्ट्रपति थाबोम्बेकी ने की। इस सम्मेलन को पृथ्वी-2 सम्मेलन भी कहा जाता है।

सम्मेलन में रियो सम्मेलन में स्वीकृत एजेंडा-21 पर व्यापक विचार-विमर्श किया गया। सम्मेलन में वर्ष 2000 में स्वीकृत संयुक्त राष्ट्र संघ सहस्राब्दी घोषणा-पत्र के लक्ष्यों को तथा विकासशील राष्ट्रों के लिए मार्च 2002 के 'मोंटेरी घोषणा-पत्र' में स्वीकृत अधिकारिक विकास सहायता (UDA) के लक्ष्यों को प्राप्त करने की घोषणा की गई। इस सम्मेलन में पर्यावरण सुरक्षा के लिए तय किए गए मानकों पर कोई आम सहमति नहीं बन पाई। अतः पर्यावरण सुरक्षा के हितों के मद्देनजर पर सम्मेलन अधिक प्रभावकारी नहीं हो सका।

भारत द्वारा घोषित कार्बन कटौती लक्ष्य

वर्ष 2020 तक भारत कार्बन उत्सर्जन में 20 से 25 प्रतिशत तक कटौती करेगा। इस कटौती के लिए केंद्र सरकार द्वारा 12वीं पंचवर्षीय योजना में निम्नलिखित उपाय अपनाए जायेंगे-

- ऊर्जा संरक्षण अधिनियम में संशोधन कर उद्योगों के लिए ऊर्जा दक्षता प्रमाण-पत्र अनिवार्य बनाया जायेगा।
- वाहनों में मानक ईंधन उपयोग को दिसंबर 2011 में अनिवार्य कर दिया जाएगा।
- ऊर्जा संरक्षण मानक के साथ कम ऊर्जा खपत वाले भवनों का निर्माण किया जाएगा।
- वन क्षेत्र को बढ़ाया जाएगा।
- कोयला विद्युत घरों में क्लीन कोक टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल किया जायेगा।
- पर्यावरण मित्र ऊर्जा संसाधनों का तेजी से विकास।

11. मांट्रियल सम्मेलन

कनाडा के मांट्रियल शहर नवंबर-दिसंबर 2005 में संयुक्त राष्ट्र संघ का 11वां जलवायु परिवर्तन सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में विकसित देशों द्वारा 2012 तक अपने यहां ग्रीन हाउस गैसों में वर्ष 1990 के स्तर को पाने के लिए इनके उत्सर्जन में 25-40 फीसदी कटौती करने, एक पर्यावरण कोष बनाने तथा विकसित तकनीक हस्तांतरण पर सहमति बनी।

12. बाली सम्मेलन

विश्व के शिखर नेताओं, वैज्ञानिकों तथा शिष्टमंडलों ने दिसंबर 2007 में UNFCCC के इस सम्मेलन में भाग लिया। इसमें ग्रीन हाउस गैसों से तापमान में वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन पर गंभीर चिन्ता जताते हुए इससे निपटने के उपायों व्यापक चर्चा की गई। बाली (इंडोनेशिया) में हुए इस सम्मेलन का अधिकारिक नाम UNFCCC Cop-13 [13th Summit of UN Framework Convention on Climate Change Conference of Parties-13] था।

1997 की क्योटो संधि से आगे की रणनीति बनाने के लिए इस सम्मेलन का आयोजन संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किया गया था। विश्व के प्रमुख 36 औद्योगिक देशों पर लागू क्योटो संधि की अवधि 2012 में समाप्त हो चुकी है। इस संधि के तहत इन 36 औद्योगिक देशों को 2008 तक ग्रीन हाउस गैसों में उत्सर्जन का स्तर क्रमशः घटाते हुए 1990 के स्तर तक लाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। दो सप्ताह तक चले इस सम्मेलन में नई संधि तैयार करने को विकसित एवं विकासशील देशों में सहमति अंतिम समय में हो सकी।

13. कोपेनहेगेन सम्मेलन (Copenhagen Conference 2009)

कोपेनहेगेन (डेनमार्क) में 7-18 दिसंबर 2009 को आयोजित जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (United Nations Framework Conference on Climate Change-UNFCCC) को COP-15 के नाम से भी जाना जाता है। 12 दिनों तक चले इस सम्मेलन में किसी सर्वसम्मति निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सका। सम्मेलन में क्योटो प्रोटोकाल के उलट विकासशील देशों पर भी कार्बन उत्सर्जन संबंधी बाध्यता निर्धारित किए जाने का प्रयास विकसित राष्ट्रों द्वारा किया गया।

कोपेनहेगेन में भारत का पक्ष

भारत कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के वैश्विक प्रयास में साझीदार है, किन्तु भारत का मानना है कि विकसित देश क्योटो प्रोटोकाल के तहत कार्बन उत्सर्जक गैसों में कमी लाए। विकासशील देशों को अनुसूची-II में ही रखते हुए छूट दी जानी चाहिए क्योंकि ऐसा न किए जाने से विकासशील देशों की विकास प्रक्रिया में बाधा पहुंचेगी। भारत का मानना है कि जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए भविष्य में कोई भी वार्ता समान तौर पर भारवहन करने के समान सिद्धांत पर आधारित होगी। जैसा कि क्योटो प्रोटोकाल में पहले से तय किया जा चुका है। कोपेनहेगेन सम्मेलन के कुछ दिनों पूर्व ही भारत ने 2020 तक अपने कार्बन उत्सर्जन में 20-25 प्रतिशत तक कटौती की घोषणा की थी। भारत की ही भांति चीन ने भी वर्ष 2020 तक कार्बन उत्सर्जन में 40-45 प्रतिशत कटौती की घोषणा की है।

अमेरिका का पक्ष

अमेरिका क्योटो प्रोटोकाल का हस्ताक्षरकर्ता देश नहीं है। अमेरिका का कहना है कि भारत और चीन जैसे देश अधिक कार्बन उत्सर्जन करते हैं। इसलिए पहले उन पर लगाम लगाई जाय। जबकि सच्चाई यह है कि अमेरिका की आबादी विश्व की आबादी का 4.5 प्रतिशत है किन्तु कार्बन उत्सर्जन में उसका योगदान 22 प्रतिशत है।

उल्लेखनीय है कि विकसित देशों की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या का 22 प्रतिशत है। जबकि ये देश सम्मिलित रूप से 88 प्रतिशत प्राकृतिक संसाधनों का एवं 73 प्रतिशत ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं।

विकासशील देशों ने विकसित देशों के इस प्रयास को पुरजोर विरोध किया। ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका, भारत तथा चीन संयुक्त रूप से क्योटो प्रोटोकाल में विकासशील देशों को दी गयी छूट को आगे चलाते रहने पर कायम रहे। इन देशों ने BASIC नामक एक साझा मंच का भी गठन किया।

अंततः 18 दिसंबर 2009 को सम्मेलन के अंतिम दिन देर रात तक गैर-बाध्यकारी कोपेनहेगेन समझौते को स्वीकार किया गया। अमेरिका व बेसिक (BASIC- Brazil, South Africa, India, China) देशों के बीच अंतिम क्षणों की बातचीत के बाद स्वीकारे गए इस समझौते को सर्वसम्मत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अनेक राष्ट्रों ने इसका पुरजोर विरोध बाद में किया है। तापमान वृद्धि को दो डिग्री तक सीमित रखने के लक्ष्य के साथ

2010 में बाध्यकारी समझौते तक पहुंचने की बात कोपेनहेगेन समझौते में कही गयी है।

14. कानकुन सम्मेलन 2010

वर्ष 2009 में कोपेनहेगेन में हुए यूएनएफसीसी (United Nations Framework on Climate Change-UNFCCC) के सम्मेलन कोप-15 की शृंखला का अगला सम्मेलन दिसंबर 2010 में मैक्सिको के शहर कानकुन में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन को कोप-16 भी कहा जाता है। कोपेनहेगेन सम्मेलन की भांति इस सम्मेलन का उद्देश्य भी 2012 में समाप्त होने वाले क्योटो प्रोटोकाल के स्थान पर लागू होने वाले नए समझौते के प्रारूप पर अंतिम सहमति तैयार करना था।

इस सम्मेलन में कार्बन उत्सर्जन पर कोई बाध्यकारी समझौता नहीं हो सका। क्योटो समझौते की ही भांति 40 विकसित देशों का ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 1990 के स्तर में 5 प्रतिशत की कटौती को आगे लागू रखने पर भी चर्चा हुई किन्तु अंतिम सहमति नहीं बन सकी।

उपलब्धियाँ: कानकुन सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि हरित जलवायु कोष (Green Climate Fund) के गठन पर सहमति रही। उल्लेखनीय है कि पूर्व में हुए जलवायु परिवर्तन सम्मेलनों में कार्बन उत्सर्जन में कमी के मुद्दे पर विकासशील देशों द्वारा विकसित तथा औद्योगिक देशों से वित्तीय सहायता तथा पर्यावरण मित्र तकनीक (Clean Technique) उपलब्ध कराने की मांग की जाती रही है। कानकुन सम्मेलन में इस मुद्दे पर सहमति बनाना एक बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। सहमति के अनुसार विकासशील देशों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए शीघ्र ही 30 अरब डॉलर की धनराशि से हरित जलवायु कोष का गठन किया जायेगा तथा 2020 तक इस कोष को 100 अरब डॉलर का किया जायेगा।

इस कोष के परिचालन के लिए एक समिति का गठन किया जायेगा। समिति का एक सदस्य विकसित देशों से तथा 25 सदस्य विकासशील देशों से होंगे। एक टेक्नोलॉजी एक्जक्यूटिव कमेटी व क्लाइमेट टेक्नोलॉजी सेंटर तथा नेटवर्क का निर्माण किया जाएगा जिसके माध्यम से एक तकनीकी तंत्र पर्यावरण मित्र तकनीकी का हस्तांतरण तथा विकास कार्य देखेगा। इस कोष का उपयोग ऊष्ण कटिबंधीय वनों के संरक्षण तथा स्वच्छ ऊर्जा तकनीक के विकास एवं गरीब देशों को उपलब्ध कराने में किया जायेगा।

इसके अतिरिक्त कानकुल सम्मेलन की कुछ प्रमुख उपलब्धियां इस प्रकार हैं-

- वनों की कटाई को रोकने के प्रावधान बनाए गए।
- जलवायु संरक्षण हेतु विभिन्न योजनाओं पर काम करने के इच्छुक राष्ट्रों की सहायता के लिए समिति का गठन किया जायेगा।
- उत्सर्जन कटौती पर निगरानी की व्यवस्था की जायेगी।
- जलवायु संरक्षण से संबंधित सभी कार्यवाहियों में मानवाधिकारों का ध्यान रखा जायेगा।
- कार्यक्रमों को प्रभावी स्वरूप प्रदान करने के लिए स्थानीय लोगों विशेषकर युवाओं तथा महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया जायेगा।
- कम कार्बन उत्सर्जन वाली तकनीकें विकासशील एवं अविकसित देशों को आवश्यक रूप से उपलब्ध कराई जायेंगी।
- पांच वर्ष बाद समूची प्रक्रिया का विश्लेषण एवं समीक्षा की जायेगी।

भारत के रुख में बदलाव: कानकुल सम्मेलन में भारत की भूमिका काफी रचनात्मक रही जिसका सभी देशों ने स्वागत किया। भारत के वन एवं पर्यावरण मंत्री ने कहा कि भारत कार्बन उत्सर्जन के मामले में उचित वैधानिक प्रारूप में बाध्यकारी प्रतिबद्धताएं निभाने को इच्छुक है। उन्होंने कहा कि भारत अपने जीडीपी की तुलना में उत्सर्जन के प्रभाव में कमी लाना चाहता है। साथ ही भारत की वर्ष 2022 तक बढ़ी मात्रा में सौर ऊर्जा पर आधारित विद्युत उत्पादन की योजना है तथा 2020 तक वर्तमान परमाणु विद्युत उत्पादन को दोगुना करने के लक्ष्य को लेकर चल रहा है।

उल्लेखनीय है कि भारत ने बाली सम्मेलन में ही बाध्यकारी प्रतिबद्धताओं को निभाने की इच्छा की घोषणा की थी। इसी क्रम में भारत ने कोपेनहेगेन सम्मेलन से पूर्व अपने कार्बन उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य को स्वयं ही घोषित कर दिया था। हालांकि भारत ने यह भी स्पष्ट किया था कि इसके बदले विकासशील देशों को उचित आर्थिक सहायता एवं स्वच्छ तकनीक उपलब्ध करायी जाये। हरित जलवायु कोष के गठन पर सहमति के साथ ही भारत ने बाध्यकारी प्रतिबद्धताओं के अंतर्गत स्वयं को लाने की इच्छा की घोषणा की।

15. डरबन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन

दक्षिण अफ्रीका के डरबन शहर में वर्ष 2011 के नवंबर-दिसंबर माह में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (यू.एन.सी.सी. सी.) संपन्न हुआ, जिसमें यह सहमति बनी कि यूरोपीय संघ कानूनी रूप से बाध्यकारी क्योटो प्रोटोकाल के अंतर्गत अपना वर्तमान उत्सर्जन कटौती संबंधी वायदा प्रस्तुत करेगा और सभी प्रमुख कार्बन उत्सर्जक देशों के लिए यह बाध्यकारी होगा कि वे ग्लोबल वार्मिंग के विरुद्ध कदम उठाएं। नये समझौते में यह तय हुआ कि सभी देश एक ही कानूनी व्यवसाय के अंतर्गत आएंगे तथा क्योटो प्रोटोकाल की दूसरी अवधि के लिए भी सभी देश राजी हुए। नया समझौता वर्ष 2020 से प्रभावी होगा तथा इसकी कार्ययोजना वर्ष 2015 तक तैयार कर ली जाएगी। इस सम्मेलन में भारत ने अपने दृढ़ रवैये का परिचय दिया। विदित हो कि इस जलवायु सम्मेलन में यूरोपीय संघ ने एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संधि की रूपरेखा प्रस्तुत की थी, जो कानूनी रूप से बाध्यकारी हो। भारत ने इसे नकारते हुए कहा कि वह वर्ष 2020 के बाद ऐसी किसी संधि का पक्षकार बनने पर विचार करसकता है। इसके पीछे भारत की यह दलील थी कि पहले विकसित देश आत्मनिरीक्षण करें और स्वयं उन गैसों का उत्सर्जन कम करें, जो ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा करती हैं। हालांकि बाद में भारत अपने रुख में नरमी लाते हुए नये समझौते के लिए तैयार हुआ। अब सभी देश मिलकर वर्ष 2015 तक नया समझौता तैयार करेंगे, जो वर्ष 2020 से लागू होगा। भारत ने बहुत मजबूती से सम्मेलन में यह पक्ष रखा कि कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के लिए विकसित देश न सिर्फ विकासशील देशों को आधुनिक प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराएं, बल्कि वित्तीय मदद भी मुहैया कराएं। डरबन सम्मेलन में निर्धन देशों हेतु जलवायु सहायता की दृष्टि से 100 अरब डॉलर के एक कोष के गठन पर इसमें सम्मिलित 194 देशों के प्रतिनिधियों में सहमति तो बनी, किंतु धन कहां से आएगा, इसकी कोई रूपरेखा तय न हो सकी। कुल मिलाकर डरबन सम्मेलन को बहुत सफल सम्मेलन नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसमें विवाद ज्यादा गहराये सार्थक रणनीति कम बनी। विकसित और विकासशील देशों के मध्य मतभेद साफ दिखे।

16. रियो+20 सम्मेलन (Rio+20 Conference)

ब्राजील के रियो डि जेनेरियो शहर में वर्ष 2012 के जून माह में रियो+20 सम्मेलन संपन्न हुआ। चूंकि पिछले रियो सम्मेलन-1992 (पृथ्वी सम्मेलन) के 20 वर्षों बाद इसका आयोजन हुआ,

अतएव यह रियो-20 सम्मेलन कहलाया। सम्मेलन में विश्व के 193 से अधिक संगठनों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। सम्मेलन के महासचिव शॉ जुकांग थे। पृथ्वी को बचाने की एक अंतर्राष्ट्रीय मुहिम के अंतर्गत आयोजित यह सम्मेलन वर्ष 1992 में रियो में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन के क्रम में था। इस सम्मेलन में मुख्य रूप से जिन सात विषयों पर चर्चा हुई, वे हैं- रोजगार, ऊर्जा, खाद्य सुरक्षा और निर्वहनीय कृषि, रहने योग्य शहर, जल, समुद्र और आपदा प्रबंधन। इस सम्मेलन को औपचारिक रूप से 'यूनाइटेड नेशंस कांफ्रेंस ऑन सस्टेनेबल डेवलपमेंट' नाम दिया गया।

रिया+20 सम्मेलन की मुख्य थीम दो थीं- पहली थीम थी- 'हरित अर्थव्यवस्था (Green Economy) का निर्माण व गरीबी दूर करने के उपाय'। इस पहली थीम के परिप्रेक्ष्य में हरित अर्थव्यवस्था (Green Economy) को समझ लेना आवश्यक होगा। हरित अर्थव्यवस्था (Green Economy) से आशय ऐसी अर्थव्यवस्था से है, जिसमें पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना विकास की ओर गतिमान अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके अंतर्गत सभी सार्वजनिक और निजी निवेशों में विभिन्न पर्यावरणीय मानकों यथा कार्बन उत्सर्जन इत्यादि की मात्रा के संतुलन पर ध्यान दिया जाता है तथा ऐसी व्यवस्था करने का प्रयास किया जाता है, जिससे पर्यावरणीय हानि कम से कम हो। यह एक अच्छी थी अवश्य थी, किंतु सम्मेलन में यूरोपीय देशों ने इस विषय वस्तु को अव्यावहारिक कह कर खारिज कर दिया। सम्मेलन की दूसरी थीम थी- 'संतुलित व सतत् विकास की अवधारणा को समझ लेना भी आवश्यक है। सतत् विकास से आशय टिकाऊ विकास से है। वर्ष 1983 में पर्यावरण एवं विकास पर गठित संयुक्त राष्ट्र के आयोग ने वर्ष 1987 में पेश की गई अपनी रिपोर्ट में सतत् विकास की अवधारणा को प्रस्तुत किया था। आयोग के अनुसार ऐसा विकास वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के कल्याण को सुनिश्चित करने के साथ-साथ पर्यावरणीय संसाधनों (जिन पर सारा विकास निर्भर करता है।) को संरक्षित करेगा। सम्मेलन में सतत् विकास के लिए 30 सदस्यीय अंतरसरकारी समूह के गठन का निर्णय लिया गया तथा यह सुनिश्चित किया गया कि सतत् विकास के लिए निजी क्षेत्र को बढ़ावा दिया जाएगा और इसके लिए विकास के पीपीपी मॉडल को प्रोत्साहित किया जाएगा।

रियो+20 सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और विशेषज्ञों ने विकसित देशों को यह सुझाव दिया कि वे विकासशील देशों को पर्यावरण के अनुकूल प्रौद्योगिक मुहैया करवाएं, क्योंकि अधिकांश विकासशील देशों के पास स्वच्छ ईंधन और पीने के साफ पानी जैसे मूलभूत संसाधनों की अत्यधिक कमी है। उल्लेखनीय है कि विकसित देशों की जनसंख्या विश्व की जनसंख्या की 22% है, लेकिन वे 88% प्राकृतिक संसाधनों एवं 73% ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं। साथ ही विश्व की 85% आय पर भी उनका नियंत्रण है। दूसरी तरफ विकासशील देशों की जनसंख्या सकल विश्व जनसंख्या की 78% है, जबकि वे मात्र 12% प्राकृतिक संसाधनों और 27% ऊर्जा का ही इस्तेमाल करते हैं। उनकी सकल आय विश्व की कुल आय की मात्र 15% ही है। आकड़ों की यह व्यापक असमानता विकासशील देशों को विकसित देशों के विरोध में खड़े होने को प्रेरित करती है। रियो+20 सम्मेलन में यह बात गतिरोध के रूप में सामने भी आई। इस सम्मेलन में भले ही सभी राष्ट्र पर्यावरण को बचाने की मुहिम में एक-दूसरे की साथ खड़े दिखे, किंतु विकसित बनाम विकासशील देशों के मुद्दे ने सम्मेलन में गतिरोध पैदा किया। सम्मेलन में जी-77 समूह के देशों ने इस बात को प्रभावी ढंग से उठाया कि विकसित देशों उन वायदों को पूरा करें, जो वे पहले से कर चुके हैं तथा उन पर ऐसा करने के लिए दबाव बनाया जाना चाहिए। विकसित देश पूर्व में किये गये अपने वायदों के प्रति उदासीन नजर आते हैं। विकासशील देशों के समूह जी-77 की इस बात को भारत ने न सिर्फ समर्थन किया, बल्कि कार्बन उत्सर्जन घटाने में विकासशील देशों की मदद नहीं करने के लिए विकसित देशों की आलोचना भी की। सम्मेलन के अंत में जारी किये गये घोषणा पत्र को 'द फ्यूचर वी वांट' (The Future We Want) नाम दिया गया।

17. संयुक्त राष्ट्र का दोहा जलवायु सम्मेलन (UN Doha Climate Conference)

कतर की राजधानी दोहा में 26 नवंबर से 7 दिसंबर 2012 तक संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें विश्व के 200 देशों ने शिरकत की। हालांकि बाद में इसकी अवधि एक दिन और बढ़ानी पड़ी और यह सम्मेलन 8 दिसंबर 2012 को समाप्त हुआ। इस अवसर पर जलवायु परिवर्तन से जुड़े खतरों एवं कार्बन उत्सर्जन पर गंभीर मंथन हुआ। जलवायु सम्मेलन की अध्यक्षता अब्दुल्ला बिन हमद अल अतीया ने की तथा संयुक्त

राष्ट्र महासचिव बान की मून ने भी इसमें शिरकत की। इस सम्मेलन में कोई परिणाम सामने नहीं आया। अमीर और गरीब देशों के मध्य मतभेद बने रहने के कारण महत्वपूर्ण मुद्दों पर कोई सार्थक सहमति नहीं बन सकी। सात सौ गैर-सरकारी संस्थाओं के समूह 'क्लाइमेट एक्शन नेटवर्क' का भी यह मानना है कि दोहा वार्ता कार्बन उत्सर्जन की कटौती बढ़ाने के में सफल नहीं रही। इस सम्मेलन की एक मात्र उपलब्धि यही रही कि इसमें उपस्थित सभी 200 देशों के बीच 'क्योटो प्रोटोकाल' को आने वाले आठ वर्षों तक जारी रखने पर सहमति बनी। इसके तहत वर्ष 2020 तक धनी देशों में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित किया जाएगा। इसमें वे ही विकसित देश सम्मिलित हैं, जिनका योगदान वैश्विक ग्रीन हाउस उत्सर्जन में 15% से कम है। भारत, चीन और अमेरिका जैसे देश इससे बाहर रहेंगे।

यहां पर 'क्योटो प्रोटोकाल' को स्पष्ट कर देना आवश्यक है। विदित हो कि वर्ष 1997 में जापान के शहर क्योटो में हुई संधि के अंतर्गत कार्बन उत्सर्जन कटौती की कानूनी बाध्यता है। इसमें यह तय किया गया था कि मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड व कार्बन डाईऑक्साइड गैसों के उत्सर्जन को घटाकर वर्ष 1990 के स्तर के नीचे लाया जाए। तब विश्व के दूसरे सबसे बड़े कार्बन उत्सर्जक देश अमेरिका ने 'क्योटो प्रोटोकाल' को स्वीकार नहीं किया था। इस संधि को लेकर विकसित देशों का आचरण सदैव मनमानीपूर्ण ही रहा है। गौरतलब है कि ऑस्ट्रेलियाई वैज्ञानिक पैप कनाल विश्व समुदाय को आगाह कर चुके हैं कि 1990 के दशक के मुकाबले ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन तीन गुना गति से बढ़ रहा है। यदि इसे नियंत्रित न किया गया, तो वर्ष 2100 तक वैश्विक तापमान में 4 से 6 डिग्री तक वृद्धि हो सकती है। 'क्योटो प्रोटोकाल' को आठ वर्षों तक आगे बढ़ाए जाने के मसौदे पर यूरोपीय संघ व आठ अन्य औद्योगिक राष्ट्रों के हस्ताक्षर किए। इसे 'दोहा क्लाइमेट गेटवे' नाम दिया गया। सम्मेलन में अधिकांश देशों ने इस बात पर चिंता व्यक्त की, कि 'ग्रीन क्लाइमेट फंड' की स्थापना के तीन वर्ष गुजर जाने के बाद भी इसके लिए धन जुटाने की शुरुआत नहीं हो सकी है।

18. संयुक्त राष्ट्र का वारसा जलवायु सम्मेलन (UN Warsaw Climate Conference)

संयुक्त राष्ट्र का वर्ष 2013 का वार्षिक जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (United Nations Climate Change Conference,

2013) पोलैंड की राजधानी वारसा में 11 से 23 नवंबर, 2013 के दौरान आयोजित किया गया। यह जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC) के पक्षकारों के सम्मेलन (Conference of Parties) का 19 वां वार्षिक सत्र (COP-19) तथा 1997 के क्योटो प्रोटोकॉल के पक्षकारों की बैठक (Meeting of the Parties) का 9वां सत्र (CMP-9) था। इस सम्मेलन में 189 देशों के 10 हजार से अधिक प्रतिनिधियों ने प्रतिभाग किया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता पोलैंड के पर्यावरण मंत्री मार्सिन कोरोलेक (Marcin Korolec) ने की। वारसा सम्मेलन की अवधि सदस्य देशों के परस्पर सहमति पर पहुंचने के लिए पूर्व निश्चित तिथि 22 नवंबर से एक दिन बढ़ गई तथा अंततः सभी पक्षकार शीघ्र ही उत्सर्जनों को कम करने की दिशा में कार्य करने पर सहमत हुए। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2015 के पेरिस सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक समझौते को अंतिम रूप दिया जाना है।

सम्मेलन के अंत में जारी वारसा घोषणापत्र में विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को उत्सर्जन कटौती हेतु दी जाने वाली सहायता का स्तर बढ़ाए जाने पर सहमति व्यक्त की गई। साथ ही एक वारसा मेकेनिज्म भी प्रस्तावित किया गया, जिसके तहत बढ़ते समुद्री स्तर और प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली क्षति से निपटने के लिए विकासशील देशों को सहायता और विशेषज्ञता उपलब्ध कराए जाने की व्यवस्था की जाएगी। UNFCCC का अगला वार्षिक सत्र (COP-20) 1-12 दिसंबर, 2014 के दौरान लीमा (पेरू) में आयोजित किया जाएगा।

पर्यावरण/जैवविविधता पर नवीनतम सम्मेलन/प्रोटोकाल

COP 12: जैव विविधता अभिसमय पक्षकारों की 12वीं बैठक

- 6-7 अक्टूबर, 2014 के दौरान प्योंगचांग (दक्षिण कोरिया) में 'जैविक विविधता पर अभिसमय' (CBD- Convention on Biological Diversity) के पक्षकारों का 12वां सम्मेलन (COP-12) आयोजित किया गया।
- COP-12 का केंद्रीय विषय (Theme) था- 'सतत विकास के लिए जैव विविधता' (Biodiversity for Sustainable Development)।

- इस सम्मेलन में विश्व के विभिन्न देशों के हजारों सरकारी प्रतिनिधियों, गैर-सरकारी संगठनों, वैज्ञानिकों और निजी क्षेत्र के प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिभाग किया गया।
- इस सम्मेलन के साथ ही 'जैव सुरक्षा पर कार्टाजेना प्रोटोकॉल' के पक्षकारों की बैठक का 7वां सत्र (COP-MOP-7) 29 सितंबर, से 3 अक्टूबर, 2014 के मध्य 'नगोया प्रोटोकॉल' के पक्षकारों की बैठक का प्रथम सत्र (COP-MOP 1) 13 से 17 अक्टूबर, 2014 के मध्य सम्पन्न हुआ।
- सीबीडी के पक्षकारों के 12वें सम्मेलन (COP-12) में वर्ष 2011-2020 हेतु जैव विविधता पर रणनीतिक योजना तथा 'एडची जैव विविधता लक्ष्यों' (Aichi Biodiversity Targets; COP 10 में अंगीकृत) के क्रियान्वयन की स्थिति पर गहन चर्चा की गई।
- इस बैठक में 'जैव विविधता पर संयुक्त राष्ट्र दशक' (2011-2020) पहलों का मध्यावधि मूल्यांकन भी किया गया।
- COP-12 के अंत में सभी पक्षकारों द्वारा 'प्योंगचांग रोडमैप' अंगीकृत किया गया जो कि प्रौद्योगिकी सहयोग, वित्तीय और विकासशील देशों की क्षमता को सुदृढ़ करने के माध्यम से जैव विविधता लक्ष्यों को हासिल करने के उपायों के संदर्भ में तैयार किया गया है।
- COP-12 के अंत में सभी पक्षकारों द्वारा स्वीकृत 'सतत् विकास के लिए जैव विविधता पर गैंगवॉन घोषणापत्र' (Gangwon Declaration on Biodiversity for Sustainable Development) जारी किया गया तथा साथ ही '2015-पश्चात् विकास एजेंडा में जैव विविधता का एकीकरण' (Integrating Biodiversity into the Post-2015 Development Agenda) और 'निर्धनता उन्मूलन एवं सतत् विकास के लिए जैव विविधता' (Biodiversity for Poverty Eradication and Sustainable Development) शीर्षकों के तहत दो महत्वपूर्ण निर्णयों को भी अपनाया गया।
- इस बैठक में सभी पक्षकारों द्वारा 12 अक्टूबर, 2014 से जेनेटिक संसाधनों पर नगोया प्रोटोकॉल के लागू होने का स्वागत किया गया तथा संयुक्त राष्ट्र महासभा से 2015 पश्चात् विकास एजेंडा में जैव विविधता रणनीतियों और 2025 के लिए विज्ञान को प्रभावी रूप से समन्वित करने के लिए कहा गया।
- उल्लेखनीय है कि 1992 के पृथ्वी सम्मेलन (Earth Summit रियो डि जेनेरियो, ब्राजील) के दौरान संपन्न तीन महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समझौतों में से 'जैविक विविधता पर अभिसमय' (CBD) भी एक है (अन्य दो हैं: 'जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा अभिसमय'-UNFCCC और 'मरुस्थलीकरण से संघर्ष हेतु संयुक्त राष्ट्र अभिसमय')।
- 5 जून, 1992 को हस्ताक्षरित (CBD) 29 दिसंबर, 1993 से प्रभावी हुआ था। वर्तमान में इसके पक्षकारों की संख्या 195 है। CBD के तीन मुख्य लक्ष्य हैं-
 - (i) जैव विविधता का संरक्षण;
 - (ii) इसके घटकों का संपोषणीय उपयोग; तथा
 - (iii) जेनेटिक संसाधनों से उद्भूत लाभों की उचित एवं निष्पक्ष साझेदारी।
- जैविक विविधता पर अभिसमय (CBD) के पक्षकारों की 11वीं बैठक (COP-11) भारत के हैदराबाद में आयोजित की गई थी तथा इसकी 13वीं बैठक (COP-13) अक्टूबर, 2016 में लॉस काबोस (बाजा कैलिफोर्निया, साउथ मेक्सिको) में आयोजित की जाएगी।

न्यूयॉर्क जलवायु शिखर सम्मेलन, 2014

- 23 सितंबर, 2014 को न्यूयॉर्क (अमेरिका) स्थित संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में संयुक्त राष्ट्र महासभा की वार्षिक बैठक से एक दिन पूर्व जलवायु शिखर सम्मेलन (Climate Summit), 2014 का आयोजन किया गया।
- वैश्विक जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की-मून की मेजबानी में आयोजित इस सम्मेलन को 'लीडर्स क्लाइमेट सम्मिट' और 'बान की-मून सम्मिट' भी कहा गया।
- इस सम्मेलन का केंद्रीय विषय 'क्रियाओं को उत्प्रेरण प्रदान करना' (Catalyzing Action) था।
- इस सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की-मून ने आशा व्यक्त की कि जलवायु परिवर्तन का सामना करने हेतु वैश्विक समुदाय समुचित कदम उठाएगा। साथ ही इस संदर्भ में वैश्विक समुदाय से अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा करने की अपील भी उन्होंने की।

जैव विविधता पर नगोया प्रोटोकॉल प्रभावी

- 12 अक्टूबर, 2014 से जैविक विविधता पर अभिसमय (CBD) पर महत्वपूर्ण पूरक अंतर्राष्ट्रीय समझौता 'नगोया प्रोटोकॉल' (Nagoya Protocol) विधिक रूप से प्रभावी पर लागू हो गया है।
- नगोया प्रोटोकॉल सीबीडी के तीन प्रमुख लक्ष्यों में से तीसरे लक्ष्य के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु पारदर्शी विधिक फ्रेमवर्क उपलब्ध कराने के उद्देश्य से तैयार किया गया है।
- 'जेनेटिक संसाधनों तक पहुंच और उनके उपयोग से प्राप्त होने वाले लाभों की उचित एवं निष्पक्ष साझेदारी' (Access to Genetic Resources and the Fair and Equitable Sharing of Benefits Arising from their Utilization) पर नगोया प्रोटोकॉल 29 अक्टूबर, 2010 को नगोया (एडिची, जापान) में जैविक विविधता पर अभिसमय (CBD) के पक्षकारों की 10वीं बैठक (COP-10) के दौरान अपनाया गया था।
- नगोया प्रोटोकॉल के प्रभावी होने के लिए इस पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में से 50 देशों द्वारा इसका अनुसमर्थन (Ratification) आवश्यक था तथा 14 जुलाई, 2014 को उरुग्वे इस संधि को अनुसमर्थन दस्तावेज सौंपने वाला 50वां पक्षकार बना। तदनुसार, 90 दिनों के पश्चात् यह प्रोटोकॉल प्रभावी हो गया है।
- जनवरी, 2015 तक नगोया प्रोटोकॉल का 56 देशों और यूरोपीय संघ द्वारा अनुसमर्थन किया जा चुका है। भारत ने अक्टूबर, 2012 में इसका अनुसमर्थन किया था।
- नगोया प्रोटोकॉल के प्रभावी हो जाने से अब अनुसंधानकर्ताओं एवं उद्योग क्षेत्र सहित जेनेटिक संसाधनों के सभी प्रदाताओं एवं उपयोगकर्ताओं को, इन संसाधनों के उपयोग से प्राप्त होने वाले लाभों के समुचित वितरण के जैविक विविधता पर अभिसमय (CBD) के लक्ष्य के संदर्भ में बेहतर विधिक रूपरेखा एवं पारदर्शिता उपलब्ध हो सकेगी। यह प्रोटोकॉल जेनेटिक संसाधनों एवं संबंधित पारंपरिक ज्ञान के उपयोग को प्रोत्साहन के साथ उनके उपयोग के लाभों के समुचित वितरण के अवसरों को सुदृढ़ करेगा। तथा जैव विविधता के संरक्षण और उसके घटकों के संपोषणीय उपयोग को बढ़ावा देगा।

- नगोया प्रोटोकॉल के प्रवर्तित होने से भारत को भी अपने जेनेटिक संसाधनों के विकास एवं संवर्धन में सहायता प्राप्त होगी तथा यह जैव संसाधन चोरी (Biopiracy) से बचाव हेतु भी मददगार होगा।
- नगोया प्रोटोकॉल का प्रवर्तन सीबीडी के COP-10 में अपनाए गए 'एडिची जैव विविधता लक्ष्यों' में भी शामिल था, जिसे वर्ष 2015 तक हासिल किया जाना था।
- उल्लेखनीय है कि सीबीडी पर एक अन्य महत्वपूर्ण पूरक समझौता 'जैव सुरक्षा पर कार्टाजेना प्रोटोकॉल' (Cartagena Protocol on Biosafety) है, जो जैविक रूपांतरित जीवों के सुरक्षित स्थानांतरण, संचालन और उपयोग संबंधी पहला अंतर्राष्ट्रीय विनियामक ढांचा है। कार्टाजेना प्रोटोकॉल पर 15 मई, 2000 को हस्ताक्षर हुए थे तथा यह 11 सितंबर, 2003 से प्रभावी हुआ था। जनवरी, 2015 की स्थिति के अनुसार इसके पक्षकारों की संख्या 169 है।

जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौता: COP-21

दिसम्बर, 2015 में पेरिस में सम्पन्न जलवायु परिवर्तन पर कॉप-21 (COP-21: Conference of Parties-21), विश्व के सभी कार्य करने की योजना प्रस्तुत करता है, जो भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय परिस्थितियों के आलोक में समता और समान्य परन्तु अलग-अलग जिम्मेदारियों तथा संबंधित क्षमताओं को दर्शाता है। पेरिस करार का उद्देश्य वैश्विक तापमान वृद्धि को 2°C से नीचे रखना है। साथ ही इसमें संपोषणीय विकास की ओर अग्रसर होने के लिए 17 संपोषणीय विकास लक्ष्य और 169 लक्ष्यों का एक नया सेट 2015 में विश्व सरकारों द्वारा अपनाया गया।

भारत, चीन और अमेरिका की सहमति के बाद पेरिस में ऐतिहासिक जलवायु परिवर्तन समझौते को मंजूर कर लिया गया। समझौते के अंतिम मसौदे को भारत चीन और अमेरिका सहित 196 देशों ने मंजूरी दी।

भारतीय प्रस्ताव के तहत इस समझौते का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि 2020 से विकासशील देशों को इस पर्यावरण संकट से निपटने के लिए आर्थिक सहायता मिलेगी। फिलहाल पाँच साल बाद प्रतिवर्ष यह रकम 100 अरब डॉलर (लगभग रु. 6,70,000 करोड़) होगी।

यह समझौता 2020 से लागू होगा और यह अमीर और गरीब देशों के बीच इस बारे में दशकों से जारी एक गतिरोध को समाप्त

करने में सक्षम होगा कि ग्लोबल वार्मिंग रोकने के लिए प्रयासों को कैसे आगे बढ़ाना है जिस पर अरबों डॉलर खर्च होने है तथा सभी के सामने आने वाले दुष्परिणामों के कैसे निपटा जाए।

हरित जलवायु कोष

नवम्बर, 2014 में वर्लिन में जलवायु परिवर्तन सम्मेलन के दौरान विकासशील देशों को उत्सर्जन कटौती व जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से निपटने के लिए 9.3 अरब डॉलर के इस कोष की संकल्पना की गई है।

यह कोष कोपेनहेगेन जलवायु शिखर सम्मेलन में स्थापित किया गया तथा इसके तहत 2020 तक प्रत्येक वर्ष 100 अरब डॉलर जुटाने का लक्ष्य रखा गया था। हरित जलवायु कोष की स्थापना UNFCCC के तत्वावधान में कैनकुन में की गई थी।

हरित जलवायु कोष विकासशील देशों की परियोजनाओं, कार्यक्रमों नीतियों व अन्य गतिविधियों को आर्थिक समर्थन प्रदान करेगा। हरित जलवायु कोष का कार्यालय दक्षिण कोरिया में स्थित है।

2030 जलवायु कार्य योजना के महत्वपूर्ण लक्ष्य

भारत ने अपने अभिप्रेत राष्ट्रीय तौर पर निर्धारित योगदान (Intended Nationally Determined Contributions-INDC) जलवायु परिवर्तन संबंधी संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन को प्रस्तुत कर दिया है। आईएनडीसी स्वच्छ ऊर्जा, विशेषकर नवीकरणीय ऊर्जा, ऊर्जा दक्षता में अभिवृद्धि, कम कार्बन सघनता और सुलभ शहरी केन्द्रों के विकास, अपशिष्ट के धनार्जन को बढ़ावा देने, सुरक्षित, सुव्यवस्थित और सतत् और पर्यावरणीय दृष्टि से अनुकूल परिवहन, नेटवर्क, प्रदूषण उपशमन तथा वन वृक्ष आवरण के सृजन के माध्यम से कार्बन सिंक में अभिवृद्धि करने में भारत के प्रयासों से संबंधित उसकी नीतियों और कार्यक्रमों पर केन्द्रित है। यह जलवायु परिवर्तन से निपटने में नागरिकों और निजी क्षेत्र के योगदान को भी ग्रहण करता है।

वी-20 समूह का गठन

8 अक्टूबर, 2015 को 20 देशों के वित्त मंत्रियों ने जलवायु परिवर्तन से होने वाले प्रभावों पर नियंत्रण हेतु वी-20 (Vulnerable Twenty) समूह की शुरुआत की। इस समूह की शुरुआत पेरू की राजधानी लीमा में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) और विश्व बैंक की वार्षिक बैठक के दौरान की गई।

वी-20 समूह अन्तर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और घरेलू स्त्रोतों से जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम करने के लिए सरकारी और निजी बिल में उल्लेखनीय वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध है। जलवायु परिवर्तन की बजट से होने वाले आर्थिक और वित्तीय जोखिम से निपटने के लिए वी-20 समूह जलवायु जोखिम पूलिंग तंत्र स्थापित करने और नौकरियों, आजीविका, व्यापार एवं निवेशकों के लिये सुरक्षित माहौल सुनिश्चित करने पर सहमत हुआ। वर्ष 2013-15 में वी-20 की अवधारणा कोस्टारिका एक्शन प्लान ऑफ द क्लाइमेट वलनरेबल फोरम में बनी थी।

वी-20 समूह में शामिल देश: अफगानिस्तान, बांग्लादेश, वारवाडोस, भूटान, कोस्टारिका, इथियोपिया, घाना, केन्या, किरिवाती, मेडागास्कर, मालदीव, नेपाल, फिलिपींस, रवांडा, सेंट लूसिया, तंजानिया, तिमोर-लेस्ते, तुवालू, वानआलू और वियतनाम।

वारसा (2013)

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, CoP19 या CMP9 को 11 से 23 नवंबर, 2013 तक वारसा, पोलैंड में आयोजित किया गया था। सदस्य राज्यों ने 2015 के पहले तिमाही में एक विचार तिथि को लक्षित करने के साथ ही उत्सर्जन पर अंकुश लगाने के लिए काम करने पर सहमति व्यक्त की।

हालांकि बात यह है कि विकसित देशों द्वारा जारी उत्सर्जन कटौती में मदद करने के लिए भुगतान करने वाले विकसित देशों ने सहायता जारी रखी। 2010-2012 के बीच प्रति वर्ष यूएस + 10 बिलियन से एक वर्ष बाद यूएस + 100 बिलियन का वादा करने के बाद, उन्होंने बाकी दशक के लिए लक्ष्य निर्धारित करने के लिए काल का विरोध किया। सम्मेलन का मसौदा संकल्प, हालांकि, केवल सहायता के 'बढ़ते स्तर' का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा वारसा तंत्र प्रस्तावित किया गया था, जो विकासशील देशों को हीटवेव, सूखा और बाढ़ जैसी गंभीर क्षति और नुकसान से निपटने के लिए विकासशील देशों को विशेषज्ञता, और संभवतः सहायता प्रदान करेगा, जो बढ़ते समुद्र के स्तर और मरुस्थलीकरण जैसे खतरों से बचाता है।

वारसा (2015)

2015 का संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, सीओपी 21 या सीएमपी 11 पेरिस में आयोजित किया गया था, पेरिस

समझौता ग्रीनहाउस-गैस-उत्सर्जन शमन, अनुकूलन और वित्त से संबंधित संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (यूएनएफसीसीसी) के भीतर एक समझौता है। वर्ष 2020 में शुरू हुआ। 196 राज्य दलों के प्रतिनिधियों द्वारा समझौते की भाषा पर बातचीत की गई और 12 दिसंबर 2015 को सर्वसम्मति से अपनाई गई। नवंबर 2018 तक, यूएनएफसीसीसी के सदस्यों ने समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं, और 184 इसके लिए पार्टी बन गए हैं। (1) पेरिस समझौते का दीर्घकालिक लक्ष्य पूर्व-औद्योगिक स्तरों से 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि को बनाए रखना है, और वृद्धि को 1.5 °C तक सीमित करने के लिए, क्योंकि इससे जलवायु परिवर्तन के जोखिमों और प्रभावों में काफी कमी आएगी।

पेरिस समझौते के तहत, प्रत्येक देश को ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के लिए किए जाने वाले योगदान पर निर्धारित, योजना और नियमित रूप से रिपोर्ट करनी चाहिए। (6) कोई तंत्र बलों (7) एक विशिष्ट तिथि तक एक विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित करने के लिए एक देश, (8) लेकिन प्रत्येक लक्ष्य पहले से निर्धारित लक्ष्यों से आगे नहीं जाना चाहिए।

मारकेश (2016)

2016 का संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन पर्यावरण मुद्दों पर चर्चा करने के लिए राजनीतिक नेताओं और कार्यकर्ताओं की एक अंतर्राष्ट्रीय बैठक थी। नवंबर, 2016 को मोरक्को के मारकेश में आयोजित किया गया था।

मारकेश घोषणा, मारकेश घोषणा से प्रकट हुआ, 15 अप्रैल 1994 को 124 राष्ट्रों द्वारा मारकेश, मोरक्को में हस्ताक्षरित एक समझौता था, जिसमें परिणति को चिन्हित किया गया था। व्यापार, सेवाओं, सेनेटरी और फाइटोसैनेटिक उपायों में व्यापार, बौद्धिक संपदा तकनीकी बाधाओं के व्यापार से संबंधित पहलुओं सहित व्यापार पर मुद्दों सहित कई अन्य समझौतों के पूरक, टैरिफ और व्यापार (GATT) पर सामान्य समझौते से विकसित हुआ। इसने विवाद समाधान के एक नए, अधिक कुशल और कानूनी रूप से बाध्यकारी साधन की भी स्थापना की।

2017 संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (बून)

2017 का संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (CoP23) पर्यावरणीय मुद्दों पर चर्चा करने के लिए राजनीतिक नेताओं, गैर-राज्य अभिनेताओं और कार्यकर्ताओं की एक अंतर्राष्ट्रीय बैठक थी।

सम्मेलन का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन से निपटने के बारे में योजनाओं पर चर्चा करना और उन्हें लागू करना था, जिसमें पेरिस समझौते के 2020 में लागू होने के बाद कैसे काम होगा, इसका विवरण भी शामिल है। जर्मन सरकार ने कड़ी समर्थन प्रदान किया, जिसकी राशि € 117 मिलियन (\$135.5 डालर) से अधिक थी। सम्मेलन सुविधाओं के निर्माण के लिए मिलियन।

CoP23 ने निष्कर्ष निकाला कि जिसे 'फिजी मोमेंटम फॉर इंप्लीमेंटेशन' कहा जाता था, जिसने पेरिस समझौते को चालू करने के लिए 2018 में उठाए जाने वाले कदमों की रूपरेखा तैयार की और तालानोआ संवाद शुरू किया - जो देशों को उनके राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान को बढ़ाने और लागू करने में मदद करने के लिए डिजाइन की गई एक प्रक्रिया है।

2020 से पहले की कार्रवाई में विकसित और विकासशील देशों के बीच एक दरार उभरने लगी। अंत में, पार्टियां 2018 और 2019 में उत्सर्जन को कम करने की प्रगति की समीक्षा के लिए अतिरिक्त स्टॉकिंग सत्र आयोजित करने के लिए सहमत हुईं, साथ ही 2018 और 2020 में जलवायु वित्त पर दो आकलन का उत्पादन किया।

विकसित और विकासशील देशों ने 2018 में नुकसान और क्षति के विवादास्पद मुद्दे पर एक विशेषज्ञ संवाद आयोजित करने पर सहमति व्यक्त की, जो जलवायु परिवर्तन के पीड़ितों के लिए विशेषज्ञता, प्रौद्योगिकी और समर्थन जुटाने के विकल्प तलाशेंगे और वारसा अंतर्राष्ट्रीय तंत्र की अगली समीक्षा को सूचित करेंगे। 2019 में।

छह साल के गतिरोध के बाद कृषि पर एक ऐतिहासिक निर्णय में पार्टियां पहुंची। समझौते ने कृषि क्षेत्र में शमन और अनुकूलन के लिए नई रणनीतियों को विकसित और कार्यान्वित करने के लिए कृषि पर कोरोनिविया संयुक्त कार्य की स्थापना की।

पार्टियों ने जेंडर एक्शन प्लान और स्थानीय समुदायों और स्वदेशी पीपुल्स प्लेटफार्म को भी अंतिम रूप दिया, दोनों को संयुक्त राष्ट्र के जलवायु वार्ता में पारंपरिक रूप से हाशिए वाले समूहों की भागीदारी बढ़ाने के लिए डिजाइन किया गया है।

ब्रिटेन, कनाडा और न्यूजीलैंड सहित 30 देशों के एक समूह ने 2030 तक बिजली उत्पादन से कोयला निकालने के उद्देश्य से पावरिंग पास्ट कोल एलायंस का शुभारंभ किया।

2018 संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (कटोविस)

2018 संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (CoP24) के लिए पार्टियों का 24वां सम्मेलन था, जिसे कटोविस जलवायु परिवर्तन सम्मेलन के रूप में भी जाना जाता है। 15 दिसंबर 2018 के बीच पोलैंड के कटोविस में आयोजित किया गया था। सम्मेलन ने 2015 के पेरिस समझौते को लागू करने के लिए नियमों पर सहमति व्यक्त की।

नवंबर 2018 में, विश्व मौसम विज्ञान संगठन ने एक रिपोर्ट जारी की जिसमें कहा गया था कि 2017 वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर 405 भागों प्रति मिलियन (पीपीएम) तक पहुंच गया है, जो तीन से पांच मिलियन वर्षों में नहीं देखा गया है। अक्टूबर 2018 में, इंटरगवर्नमेंटल पैनल आन क्लाइमेट चेंज (IPCC) ने ग्लोबल वाहमग पर 1.5°C (SR15) पर अपनी विशेष रिपोर्ट प्रकाशित की।

अभी हम वैश्विक स्तर पर मानव निर्मित आपदा का सामना कर रहे हैं, हजारों वर्षों में हमारा सबसे बड़ा खतरा: जलवायु परिवर्तन। यदि हम कार्रवाई नहीं करते हैं, तो हमारी सभ्यताओं का पतन और प्राकृतिक दुनिया के अधिकांश भाग का विस्तार क्षितिज पर है।

मुझे उम्मीद है कि इस सम्मेलन में हम प्राप्त करेंगे कि हमें एहसास है कि हम एक अस्तित्व के खतरे का सामना कर रहे

हैं। यह मानवता के लिए अब तक का सबसे बड़ा संकट है। पहले हमें इसका एहसास करना होगा और फिर जितनी जल्दी हो सके उत्सर्जन को रोकने के लिए कुछ करना होगा और जो हम बचा सकते हैं उसे बचाने की कोशिश करें।

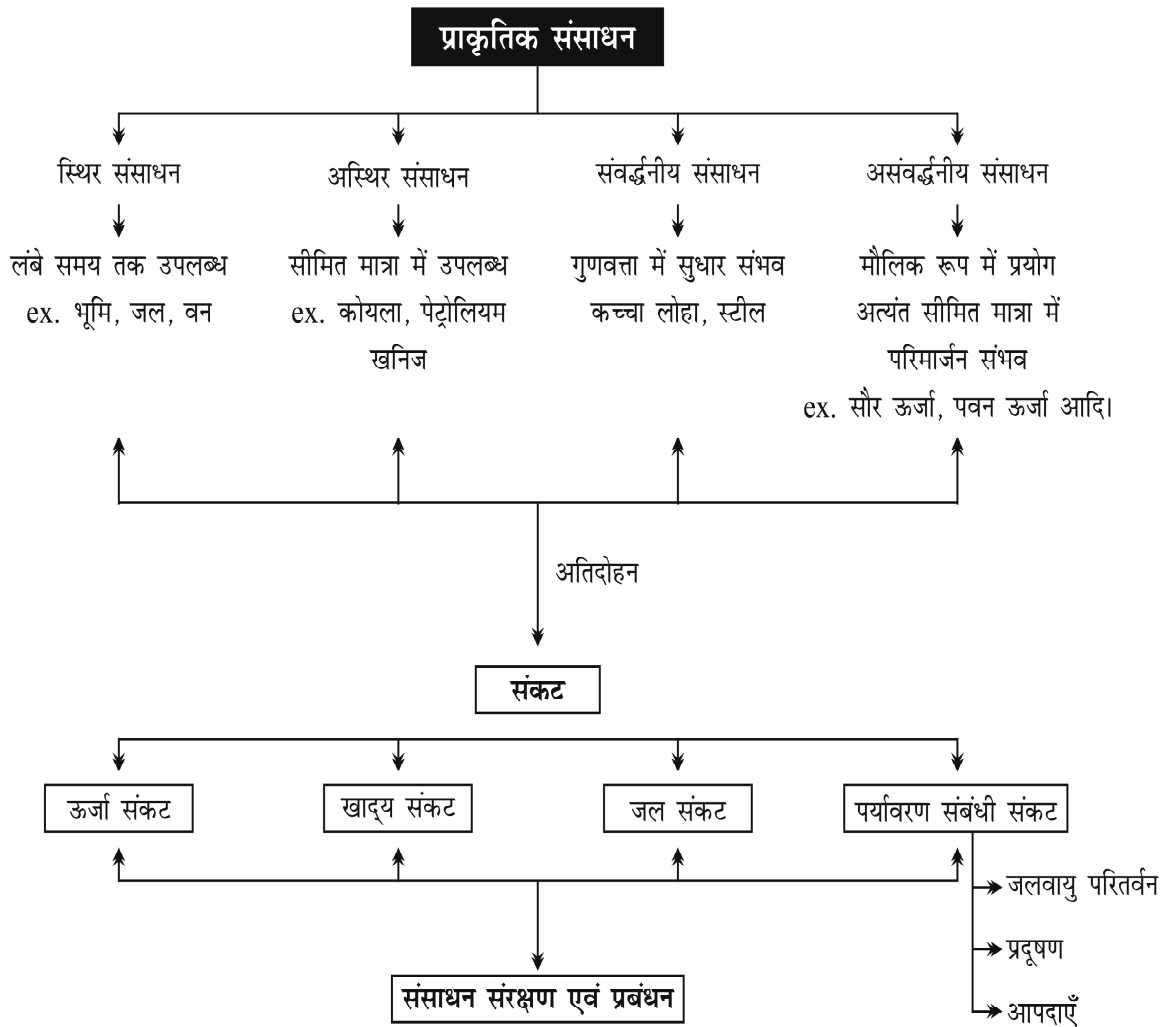
परिणाम

सम्मेलन ने पेरिस समझौते को लागू करने के लिए नियमों पर सहमति व्यक्त की, जो 2020 में लागू होगा, यह कहना है कि सरकार कैसे मापेगी, और उनके उत्सर्जन में कटौती के प्रयासों पर रिपोर्ट करेगी।

- 50 देशों ने 'सिलेसिया घोषणा' पर हस्ताक्षर किए, जिसने 'कार्यबल का सिर्फ एक संक्रमण' सुनिश्चित करने के लिए उत्सर्जन को कम करने की नीतियों पर जोर दिया और 'सभ्य काम और गुणवत्ता वाले रोजगार' का निर्माण किया।
- CoP24 रिपोर्ट का उपयोग करने के लिए 1.5°C और 'आमंत्रित' देशों के ग्लोबल वार्मिंग पर विशेष रिपोर्ट के 'समय पर पूरा होने' का स्वागत करता है।
- कुछ देशों का कहना है कि वे भारत, कनाडा, यूक्रेन और जमैका सहित 2020 में अपनी जलवायु प्रतिज्ञा को बढ़ाएं।
- यूरोपीय संघ, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, अर्जेंटीना, मैक्सिको और कनाडा सहित कई दर्जन देशों ने 'उच्च महत्वाकांक्षा गठबंधन' बनाया - 2020 तक अपना लक्ष्य बढ़ाने का संकल्प लिया।



प्राकृतिक संसाधन (NATURAL RESOURCES)



संसाधन शब्द अंग्रेजी भाषा के Resource का हिन्दी अनुवाद है जो Re तथा Source दो शब्दों के योग बना है। Re का अर्थ है पुनः अथवा दीर्घ काल तक निर्भर Source का तात्पर्य/साधन/ तत्व/ स्रोत जिस पर मानव निर्भर करता है। इस प्रकार संसाधन का शाब्दिक अर्थ है वह स्रोत (साधन/तत्व) जिस पर लम्बे समय तक निर्भर रहा जाय।

संसाधनों के वर्ग

मानव ने अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति और बौद्धिक क्षमता के बल पर प्रौद्योगिकी की सहायता से प्रकृति के अनेक तत्वों को संसाधनों के रूप में परिवर्तित किया। एक ओर मानव प्राकृतिक स्रोतों से अपनी आवश्यकता पूर्ति करता है तो दूसरी ओर स्वयं मानव की आवश्यकतापूर्ति में सहायता होता है। इस प्रकार मानव स्वयं एवं संसाधन है।

प्राकृतिक संसाधन

- प्राकृतिक संसाधनों का मूल स्रोत प्रकृति है।
- प्राकृतिक संसाधन प्रकृति द्वारा प्रदत्त वे तत्व, पदार्थ अथवा प्राणी हैं जो मानव हेतु उपयोगी हैं।
- भूमि, जल, वायु, खनिज, पशु-पक्षी एवं वनस्पतियाँ प्राकृतिक संसाधन हैं।
- प्राकृतिक संसाधनों के कुछ तत्व प्रत्येक स्थान पर विद्यमान होते हैं और कुछ तत्व कुछ विशेष स्थानों पर ही मिलते हैं।
- उदाहरण के लिए वायु की उपस्थिति विश्व में सभी स्थानों पर है परन्तु सभी खनिज अथवा धातुएँ सभी स्थानों पर उपलब्ध नहीं होती।
- मानव अपनी आवश्यकतानुसार इन संसाधनों का उपयोग एवं रूपान्तरण कर सकता है, परन्तु उनका निर्माण नहीं कर सकता।

प्राकृतिक संसाधनों को परिभाषित करते हुए जिम्मरमैन (Zimmerman) ने लिखा है,

- “प्रकृति के वे समस्त पक्ष जिनसे मानव अपनी जैविक आवश्यकताओं की संतुष्टि कर सकता हो, प्राकृतिक संसाधन कहे जा सकते हैं।” (Theose aspects of nature which man can utilize in the satisfaction of his creature needs may be called natural resources.-Zimmerman.)

- सिंह (Singh) के शब्दों में, “वस्तुतः प्रकृति के समस्त गोचर एवं अगोचर तत्व जो मानवोपयोगी हैं, प्राकृतिक संसाधन कहे जा सकते हैं।”
 - प्राकृतिक संसाधन के अनेक रूप मिलते हैं। उत्पत्ति, उपलब्धता, उपयोगिता एवं नवीकरणीयता की दृष्टि से इसको अनेक वर्गों से वर्गीकृत किया जा सकता है।
 - मनुष्य धरती पर उपलब्ध सीमित प्राकृतिक संसाधनों का तर्कसंगत ढंग से उपयोग करता है।
 - संसाधन यदि कम होते हैं तो वह विकल्पों की खोज करता है।
 - प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय क्रियाओं की गतिशीलता में परस्पर समायोजन होने के कारण परिवर्तन घटित होते हैं और विकल्प उपस्थित होते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो संसाधनों की सीमित मात्रा अथवा अल्पता मानव विकास की राह में अवरोधक बन जाती है।
 - मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन संसाधनों का उपयोग करते हैं। कुछ संसाधन तो एक बार के उपयोग से ही समाप्त हो जाते हैं, कुछ एक-दो बार के उपयोग से समाप्त होते हैं और कुछ संसाधन ऐसे होते हैं जो बार-बार उपयोग करने पर भी नष्ट नहीं होते।
 - कुछ संसाधनों को पुनर्स्थापित भी किया जा सकता है।
 - जो शीघ्र नष्ट होने वाले संसाधन हैं उनको दीर्घ काल तक संरक्षित रखने के उपाय भी किए जाते हैं ताकि भावी उपभोग को सुनिश्चित किया जा सके।
 - जहाँ नवीकरणीयता लम्बे समय तक संसाधनों की आपूर्ति को सुनिश्चित करती है वहीं अनवीकरणीयता संसाधनों की समाप्ति की ओर इंगित करती है। नवीकरणीयता की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधनों के चार वर्ग हैं:-
1. **टिकाऊ अथवा स्थिर संसाधनों** का उपयोग मनुष्य लम्बे समय तक कर सकता है।
 - भूमि, जल, वन सम्पदा आदि टिकाऊ संसाधन हैं।
 - इनका उपयोग करते समय मनुष्य इसके लक्ष्य को रोकने का प्रयत्न करता है ताकि इनकी उपलब्धता सदैव बनी रहे।
 2. **अवक्षीय अथवा अस्थिर संसाधनों** की मात्रा सीमित तथा निश्चित होती है जो उपभोग अथवा उपयोग के साथ कम होती हुई समाप्ति की ओर अग्रसर होती है।

- प्रकृति इन संसाधनों को हजारों वर्ष में उत्पन्न करती है।
- लोहा, सोना, चाँदी, टीन, अभ्रक आदि खनिज अवक्षयी संसाधन हैं।
- अवक्षयी संसाधनों के अन्तर्गत संचित संसाधन (fundresource) भी आते हैं, जैसे-कोयला, पेट्रोलियम आदि।
- इनका एक बार उपयोग हो जाने के बाद वे पूर्ण रूप से समाप्त हो जाते हैं। उपयोग की जा चुकी मात्रा का पुनः स्थापन किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।
- 3. **संबद्धनीय संसाधन** वे हैं जिनकी गुणवत्ता में अभिवृद्धि किए जाने की सम्भावना होती है। उदाहरण-कच्चे लोहे को स्टील के रूप में परिवर्तित करके उसकी गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है।
- 4. **असंबद्धनीय संसाधन** वे हैं जिनका उपयोग उनके मौलिक रूप में ही किया जा सकता है।
 - जलवायु, सौर ऊर्जा, पवन, वर्षा जल, सागर, धरती आदि असंबद्धनीय संसाधन हैं।
 - इनमें अत्यन्त सीमित मात्रा में ही परिमार्जन सम्भव है।
 - उदाहरण के लिए कृत्रिम वातानुकूलन एक सीमित क्षेत्र का किया जा सकता है। पूरे क्षेत्र का तापमान-नियन्त्रण सम्भव नहीं है।
 - प्राकृतिक संसाधनों के अन्तर्गत आगामी पंक्तियों में वन संसाधन, जल संसाधन, खनिज संसाधन, खाद्य संसाधन, ऊर्जा संसाधन तथा भू-संसाधन का वर्णन किया जायेगा।
- आदिकाल से ही मानव जीवन में वनों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।
- मानव की आदिम जाति अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताएँ वनों से ही पूरी करती है।
- जंगलों में रहना, पत्तों या वृक्ष की छालों को पहना और कंद-मूल फलों को खाना इनके जीवन यापन का तरीका था।
- अर्थात् भोजन, वस्त्र और आवास की मौलिक आवश्यकताएँ वन से ही पूर्ण होती थीं। वन द्वारा ये सुविधाएँ हमें उनके निम्नलिखित कार्यों के परिणामस्वरूप प्राप्त होती हैं:-

उत्पादक कार्य

- वनों से अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ, इमारती लकड़ी ईंधन, चाय, औषधियाँ, लाख, तेंदूपत्ता, छाल, कन्दमूल, फल-फूल आदि प्राप्त होते हैं।
- इसके साथ ही अनेक प्रकार की जड़ी-बुटियाँ, रसायन तथा यौगिक आदि जैसे रेजिन, अल्केलायड, एसेन्शियल आयल आदि उत्पाद प्राप्त होते हैं
- इन उत्पादों के कारण मानव की आर्थिक, प्रणाली में वनों की स्वीकार्य एवं महत्वपूर्ण भूमिका है।
- वन असंख्य कुटीर एवं लघु उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं और लाखों व्यक्तियों को आजीविका प्रदान करते हैं।

संरक्षण कार्य

- वृक्षों की जड़ों को मजबूती से पकड़े रहती हैं जिसके फलस्वरूप भूक्षरण से बचाव होता है।
- वृक्षों की पत्तियाँ आदि सूखने के बाद गिर कर भूमि की उर्वरा शक्ति की संरक्षा करती है।
- वन वाष्पीकरण के माध्यम से बादलों को आकर्षित कर वर्षा कराने में सहयोग करते हैं, इस प्रकार सूखे से बचाव करते हैं। वन तापमान नियन्त्रण में भी योगदान देते हैं।
- वनों से ग्रीष्मकालीन तापमान में 4 से 10 डिग्री तक की कमी हो सकती है।
- वह हमें बाढ़ एवं सूखे से सुरक्षा प्रदान करने के साथ-साथ विकिरण, तीव्र ध्वनि, प्रकाश, गंध एवं तीव्र हवाओं से भी सुरक्षा प्रदान करते हैं।

वन संसाधन

- भूमंडल पर लगभग एक तिहाई भू-भाग सघन प्राकृतिक वनस्पतियों से ढँका हुआ है, जिन्हें वन कहते हैं।
- वन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जो पारस्थितिक (Ecological) संतुलन बनाए रखते हैं।
- ये वन असंख्य जीवन जन्तुओं का निवास हैं।
- पृथ्वी पर पाई जाने वाली वनस्पतियों का अधिकांश भाग वनों के रूप में ही होता है।

नियामक कार्य

- वनों के द्वारा प्रमुख गैसों, जल, खनिज तत्वों तथा विकिरण ऊर्जा का अवशोषण, संचयन तथा उत्सर्जन का नियमन होता है।
- इस नियामक कार्य से धरती के पर्यावरणीय मूल्य में वृद्धि होती है।
- वन बाढ़, सूखा, जैव रासायनिक चक्र, जलचक्र तथा कार्बन चक्र को प्रभावी तरीके से विनियमित करते हैं।

वनों का अतिदोहन

- वन पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।
- वनों का समाप्त होना प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में हमारे पर्यावरण पर प्रभाव डालता है।
- हमारे देश में लगभग नब्बे प्रतिशत लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में किया गया।
- जैसे-जैसे मानवों की जनसंख्या में वृद्धि हुई है, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उन्होंने वनों का अत्याधिक विनाश किया है।
- कभी कृषि के लिए वनों को काट डाला गया, कभी मकान बनाने की जगह के लिए वन काटे गए। इसके अलावा पशुओं के चारे के लिए, इंधन और इमारती लकड़ी के लिए भी वनों को समाप्त किया गया।
- कृषि विस्तार, नगरीकरण, उद्योगों की स्थापना एवं विस्तार के साथ-साथ पशुओं द्वारा वनस्पतियों, पौधे, पत्तियों आदि वन्य उत्पादों को चरे जाने के कारण भी अत्यन्त तीव्र गति से वनों का उन्मूलन हुआ है।
- जानवरों द्वारा चारागाह के रूप में वन क्षेत्रों को उपयोग किए जाने के कारण धरती पर वनोन्मूलित क्षेत्रों में वृद्धि हुई है। ऐसे क्षेत्रों को 'खाली वन क्षेत्र' कहा जाता है।
- मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ खाली वन क्षेत्र तो बढ़ते जा रहे हैं किन्तु धरती का वनाच्छादित क्षेत्र तेजी से घटता जा रहा है।
- शीतोष्ण वनों के क्षेत्र में लगभग एक प्रतिशत क्षेत्र की कमी आई है जबकि उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में लगभग 40

प्रतिशत वन समाप्त हो चुके हैं। हमारे देश में भी वन भू-भाग में अत्यन्त तीव्र गिरावट आई है।

- बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत का लगभग 30 प्रतिशत भू-भाग क्षेत्र था। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह मात्र 19.4 प्रतिशत रह गया है जिसमें 11.05 प्रतिशत सघन वन, 7.8 प्रतिशत खुले वन, 0.1 प्रतिशत सुन्दर वन (कच्छ वनस्पति) तथा 1.6 प्रतिशत स्क्रब (छोटे वन) हैं।
- शेष लगभग 78 प्रतिशत वन रहित भूमि है। अर्थात् वन क्षेत्र का लगभग दो तिहाई भाग सघन वन है और शेष खुले क्षरित वन (Open degraded forests) हैं।
- वनों के तीव्र उन्मूलन के कारण वर्तमान में हमारे देश में प्रति व्यक्ति मात्र 0.06 हेक्टेयर वन उपलब्ध हैं, जबकि विश्व के लिए निर्धारित औसत वन क्षेत्र है 0.64 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति।
- वनों के अतिदोहन से निर्वनीकरण (deforestation) की स्थिति उत्पन्न हो गई है।
- निर्वनीकरण के कारण सम्पूर्ण पर्यावरण पर कई दुष्प्रभाव पड़ रहे हैं।
- निर्वनीकरण का प्रमुख दुष्परिणाम है, उपजाऊ भूमि का कटाव, भूस्खलन, बाढ़, सूखा, अकाल, वर्षा में कमी तथा पर्यावरण प्रदूषण।
- वृक्षों के न रहने से वर्षा जल सीधे मिट्टी पर गिरती है और मिट्टी को तीव्र आघात पहुँचता है, इससे मिट्टी की ऊपरी सतह ढीली पड़ जाती है। वृक्षों की जड़ें भी मिट्टी को बाँधे रखने के लिए जब उपलब्ध नहीं रहती तो मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत आसानी से वर्षा जल के साथ बह जाती है।
- इस प्रकार निर्वनीकरण के कारण उपजाऊ भूमि का कटाव होता है।
- वन रहित मिट्टी की जल शोषण क्षमता में कमी आ जाती है, जिससे भूमिगत जलभंडार में कमी आती है वनों के कट जाने से मृदा में शुष्कता बढ़ने लगती है और मरुस्थलों का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है।
- वायु के साथ मरुस्थल से बालू-कणों का प्रसार उपजाऊ भूमि पर हो जाता है जिससे भूमि की उर्वराशक्ति क्षीण हो जाती है।